THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180220
UNIVERSAL
LIBRARY

# जब सारा आलम सोता है

( ८ कहानियाँ )

लेखक—

श्री० पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.

प्रथम संस्करण ] सन् १९५१ ईसवी [ मूल्य १॥ )

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हास्पिटल रोड, आगरा।

मुद्रक—
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बागमुजफ्फरखाँ, आगरा।

# विषय-सूची


| | पृष्ठ |
|---|---|
| १—जब सारा आलम सोता है | १ |
| २—आज़ादी से आठ दिन पहले | २३ |
| ३—टाम, डिक, हैरी एण्ड कम्पनी लि० | ३१ |
| ४—झाऊलाल | ३८ |
| ५—रंग | ४६ |
| ६—मलंग | ७१ |
| ७—राष्ट्रीय पोशाक | ६७ |
| ८—चित्र विचित्र | १०५ |

# १—जब सारा आलम सोता है

कहने को ( बम्बई, मालाबार पहाड़ के ) रिज-रोड स्थित 'हवाई महल' चौमहला मकान पर रहता उसके हरेक खण्ड में एक ही एक परिवार।

पहले खण्ड में पत्रकार—प्रदीप; दूसरे खण्ड में बड़ा सी० आई० डी० अफसर-खण्डालावाला; तीसरे में कांग्रेसी महानेता माया मुकुन्द मोड़े तथा चौथे खण्ड में रहते देवदत्त दाधीच दैवज्ञ, ज्योतिषाचार्य। हवाई महल से समुद्र अपार नजर आता आकाश भी नजर आता अपार, मालाबार पहाड़ पर खड़े धवलरंगी महलों का विस्तार नजर आता अपार, सुख अपार, सौन्दर्य अपार। हवाई महलवालों को उसी मोहक पहाड़ की तलेटी में विस्तृत फैली महानगरी मुम्बई के तीस लाख मानवों का किलबिल कोलाहल, अपार दुख- बिलकुल नजर नहीं आता था। हवाई महल में हर घड़ी मौजीली हवा तेज रहती थी। बहारदार!

३० जनवरी सन् १९४८ की बात। उसी दिन पत्रकार प्रदीप का जन्म दिन था। दिन के दो ही बजे उक्त चारों मित्र जर्नलिस्ट के नवसज्जित बड़े हाल में एकत्रित हो गये। सम्पादक ने किसी को फोल्डिंग कुर्सी पर आसन दिया किसी को कोच पर किसी को कुशन पर।

"आज मैंने" प्रदीप पत्रकार ने आत्मीयता के भाव से भर कर कहा—"आज मैंने आप लोगों की दावत की एक नयी

तरकीब सोची है––यानी खाना वगैरह बिलकुल तैयार नहीं कराया है·········· ”

“अरे, मार डाला रे !” जन नायक माया मुकुन्द मोड़े ने मुड़कर कहा ।

“खूब !” सी० आई० डी० का बड़ा अफसर खण्डालावाला ने कुढ़ कर पूछा –“दावत या अदावत ?”

“इसके यहाँ तर माल मिलेगा, कचराकूट का चान्स; इसी विचार से मैंने कल शाम से ही अनशन कर रखा है।” दैवज्ञ देवदत्त ने खीझ के दाँत दिखाते हुए कहा ।

“मगर” अपने शब्द-जाल के स्टंट से मन ही मन प्रसन्न पत्रकार प्रदीप ने कहा––“खाना तैयार न कराने का अर्थ यह नहीं कि खाना मिलेगा ही नहीं । मिलेंगी मित्रों को मनचाही चीजें । यह एक-एक ‘चिट’ लीजिये और अपनी-अपनी पसन्द की एक-एक चीज लिख दीजिये । वही अभी तैयार करायी जायगी, मँगायी जायगी । अब कृपा कीजिये––लिखिये ।”

तीनों मित्रों ने बहस किये बगैर अपने पुर्जे पर अपनी मनचाही चीज का नाम लिख कर सम्पादक को दे दिया । पुर्जे पढ़ते ही पत्रकार पहले तो मुस्कराया, फिर बोला––

“खुशी की बात है, हैरत की बात––तीनों मित्रों की फर्मायश एक––शराब ! भूखा कोई भी नहीं, प्यासे सभी । मुझे कोई आपत्ति नहीं, पर शराब मिलना मुश्किल है । ‘प्राहिबिशन’ की वजह से बम्बई की वह ब्यूटी जाती रही जो अंग्रेजी अमलदारी में थी । शहर के कोने में रेस्टराँ गली-गली में, होटल में गुलदस्ते । नगर में मदिरालय, उपनगरों में, उपवनों में ताड़ी की––“बूथ” ।

---

जब सारा आलम सोता है—

"अजी लाख प्राहिबिशन हो या मद्य-निषेध--बम्बई में तो आज भी जहाँ माँगो वहीं शराब। मेरी आँखों से क्या छिपा है।" सी० आई० डी० बोला।

"तो आप ही मँगा दें हुजूर!" नेता ने पारसी से आग्रह किया मीठा ताना देते हुए चुस्ती से--"युगों से पारसी मित्र सारी बम्बई को बढ़िया से बढ़िया शराब और ताड़ी पिलाने का पुण्य कर्म करते आ रहे हैं। आप भी चन्द मित्रों को पिलाकर कुछ छोटे पारसी न बन जायेंगे।"

"समझता हूं साला तेरा ताना" खुनसाया खण्डालावाला--"पारसियों ने पिलाया किसी साले के गले में जबरदस्ती डाल कर। इसी वक्त सबने शराब ही माँगी--सो किसी पारसी से पूछ कर क्या? मैं कहता हूं जब तक पीने वाले हैं, पिलाने वाले रहेंगे ही--तो पारसी गरीब ने पिलाकर किसी का गला काटा? ख्रिस्तान पिलाता तो ठीक? मुसलमान पिलाता तो ठीक? फरासी, जर्मन, अमरीकी पिलाता तो आबेहयात पिलाता क्या, फिर पारसियों ने ही क्या हलाहल दे दिया? शराब बेचने वाले पारसियों मे मैं ऐसे ऐसे दिखा सकता हूँ जिन्होंने पचासों लाख की शराबें बेचने पर भी एक बूँद खुद कभी नहीं पी। यह योग है--योगाभ्यास। व्यापार योग इसका नाम रख लो। योग के आठ अंग, व्यापार के भी आठों अंग। योगी मुक्ति के लिए तपता, व्यापारी मनी के लिए। पारसी सच्चा व्यापारी है। हाँ बेची शराब पारसियों ने व्यापार--योगियों की तरह--मुनाफा देख कर, यह उनकी बुराई है--देख लो। और मत देखो पारसियों की उन अमूल्य सेवाओं की तरफ जो हमारे बुजुर्ग एक युग से सारे देश की करते आ रहे

हैं। मत देखो दातव्य संस्थाओं की तरफ, अस्पतालों की तरफ, बड़े-बड़े दानों की तरफ, दादा भाई की तरफ, फीरोजशाह की तरफ। बम्बई को शराब हमने पिलाई तुम्हें मालूम है; बम्बई का विकास हमने कितना किया तुम्हें नहीं मालूम! तुम काले हो काले। कुत्ते को शराब पिला दूं जरूरत पड़े तो स्वर्ग से लाकर। पर तुम्हारे लिए नहीं। तुम में पात्रता नहीं पीने की। तुम्हीं सुरा को बदनाम करने वाले असुर हो।"

"हीयर-हीयर!" पत्रकार उछल पड़ा—"खण्डालावाला ग्रेट स्पीकर-एन्यूज़! मगर लेक्चर ज़रा लम्बा हो गया, इस लिहाज़ से कि पीने में देर हो रही है और लाना पड़ेगा हज़रत को ही। क्योंकि आपने सबके सामने मंजूर किया है कि देश के सब से बड़े कलवरिया कर्मयोगी आप ही हैं, कर्मयोगी—कोई हो।"

"फिर ताना!" पारसी कुड़कुड़ाया—"प्लेटफार्म पर नाचने वालों का सपोर्टर कलमनचनियाँ, लिट्टी वाले का भाई गंडेरी वाला। है कलवरिया कर्मयोगी पारसी, पर भाई प्रमोद! यह तो बतलाओ कि गाँजे की वह कली कहां से आती है जिसे गुलाब में मल, सिगरेट में भर कर तुम दिन-रात पिया करते हो? यह नेताजी चुपके से अफीम जो गटकते हैं उसकी गुटिया भी क्या कलवरिया से ही आती है? और ज्योतिषाचार्य की भंग क्या आसमान से बरसती है? जब कुछ न कुछ सभी पीते हैं तब सभी पियक्कड़ हैं, न कि अकेले शराबी। शराब मैं ला दूंगा—विस्की, ब्रैण्डी, रम, पोर्ट, लिकर, शैम्पेन, शैटू, व्योंड़ा, ठर्रा—जो बोलो वही, पर पहले मिस्टर मोड़े को माफ़ी माँगनी पड़ेगी।"

---

जब सारा आलम सोता है—

"माफ़ कर बाबा।" मोड़े ने हाथ जोड़ कर कहा—"और मेरी मान, तू कांग्रेस में भरती हो जा, नौकरी छोड़ दे, तू प्लेट-फार्म पर गज़ब की स्पीच देगा।

"मगर मैं तो शराब पीता हूं--रोज़।"

"शराब पीना बुरा नहीं, बुरा है बेवकूफ़ होना। अक्ल जहाँ वहाँ बुराई कहाँ? पालिटिक्स का अर्थ है—ऐब कर साथ हुनर के!"

चार बज गये चखचख में तब शराब आयी, चारों चखने बैठे, नमकीन चखने के संग बरफ़, सोड़ा, लैमन। चारों के पेट में पेग उतरा कि सिगरेटें सुलग उठीं, कमरे के वातावरण में धुआँ छाने लगा। सबके चेहरे खिल उठे एक सी० आई० डी० खण्डालावाला को छोड़ कर। सभी चहक चले पर वह चुप रहा।

"क्यों रे पारसी के पट्ठे!" पत्रकार ने ठट्ठे की आवाज में कहा—"अभी तक तेरा मुँह सीधा नहीं हुआ। मोड़े ने माँफी मांग ली फिर तूने कुछ कम नहीं सुनाया उसको—फिर? अब क्या बाक़ी है?"

"मोड़े की बात नहीं--आज सवेरे से ही मेरा माथा भन्नाया हुआ है। उस विक्टर के कारण, वही सी० आई० डी० इन्स-पेक्टर विक्टर। बिना कहे सुने गायब हो जाता है और लौटने पर बातें बनाने लगता है। सौ बार मैंने उसको सुनाया कि वह सी० आई० डी० नहीं बावर्ची है, उसे मेरे किचनकी निगरानी करनी चाहिये -तनख्वाह इन्सपेक्टरी की ही ले। पर उसे तो हराम में सरकार के पैसे लेने हैं। इधर-उधर सैर सपाटे कर लौटेगा तो कहेगा--बड़ी कान्सपिरेसी, भारी षड्यन्त्र एक दल

विशेष कर रहा है। खतरा सुनायेगा नेहरू, पटेल, आजाद—यहां तक कि गान्धी जी की जान पर भी खतरा। बेवकूफ को यह मालूम नहीं कि खतरों का खजाना इङ्गलैंड चला गया अङ्गरेजी राज्य के साथ ही। अब कांग्रेसी राज है और अमन है, चैन है। कोई बेवकूफ ही हमारे नेताओं पर किसी के द्वारा हाथ उठाये जाने की कल्पना कर सकता है।"

"औरों की बातें तो कुण्डली देख कर कल बतलाऊँगा पर जहां तक गान्धी जी का सम्बन्ध है, मैं दावे से कह सकता हूं कि वह १२५ वर्ष की अवस्था में मरेंगे—इसके पहले हर्गिज नहीं।" दैवज्ञ देवदत्त ने शराब के हर्ष से आंखें विस्फारित कर कहा।

"बस बहक चले ज्योतिषाचार्य। मैं कहता हूं, सारे के सारे ज्योतिषी हवा में तीर मारते हैं, कुछ नहीं जानते। आप ही बतलाइये—महात्माजी का जन्म दिन, मास, पक्ष, लग्न का पता है आपको?" नेता माया मुकुन्द मोड़े एक तो स्वभाव से ही जरा तीखा बोलने वाला दूसरे सीने में तेजरौ शराब। दैवज्ञ ज्योतिषी भन्ना उठा।

"बहके तो नहीं आप, यह प्लेटफार्म नहीं, नक्षत्र लोक है। गान्धीजी का जन्म हुआ था विक्रम संवत १६२६ की त्रयोदशी के दिन रविवार को।"

"सरासर ग़लत—दिन रविवार नहीं शनिवार था। ऐसा स्वयं महात्मा जी ने लिखा है अपनी आत्म कथा में।" मोड़े ने ललकारा।

"ऐसा ही कुछ मैंने भी पढ़ा है।" पत्रकार ने समर्थन किया।

"आप लोगों ने कुछ भी पढ़ा हो, ज्ञान ज्योतिष का मुझे

है। बड़े-बड़े ज्योतिषियों ने महात्मा जी का जन्म दिन रविवार लिखा है, तब गान्धी जी कुछ भी लिखा करें। वह अन्तर्यामी तो हैं नहीं, दैवज्ञ तो हैं नहीं।"

इस पर दूसरे ठहाका मार कर हंस पड़े। खण्डालावाला भी जिसका मुंह शुरू से ही सूजा हुआ था खिलखिला पड़ा। ज्योतिषी आवेश में आ गया, दैव-विद्या के प्रति दुष्टों की अवज्ञा देख कर। तमककर बोला वह—

"तुम जन्म दिन की बात कहते हो-मैं कहता हूँ मुझसे पूछ लो महात्मा का मृत्यु दिन। जन्म दिन ज्योतिषी ने जाना तो क्या जाना जिसे चमारिन तक बतला सकती है। मृत्यु दिन बतलाना भविष्य वक्ता का हिस्सा है—मेरा।" गिलास की शेष मदिरा पेट में उडेल कर फीका मुंह पोंछने लगा वह।

"अच्छा बतलाओ!" पत्रकार ने अशुभ प्रश्न किया—"कब मरेंगे महात्मा जी?"

"तुझे क्या जल्दी पड़ी है जो साधू का ऐसा भविष्य शैतान से पूछता है? सनसनीखेज खबर छापने को मरा जा रहा है या मंहगे विशेषांक निकालने को?" खण्डालावाला को बहुत ही बुरा लगा पत्रकार का प्रश्न—"मैं कहता हूँ महात्मा जी कभी न मरें—अमर हों?"

"और तू सी० आई० डी० का बड़ा अफसर बना मालेमुफ्त उड़ाया कर।" प्रदीप को चढ़ चली विस्की विलायती—"तुझे गान्धीजी की जरूरत मुझसे ज्यादा है। स्टेट रहे तो गवर्नमेण्ट रहे, तो सेना पुलीस रहे, सी० आई० डी० रहे—तू रहे। गान्धी तेरे लिए अच्छे, मेरे लिए भी तो बुरे नहीं, झूठ न कहूंगा, पर हर बात में जो वह महात्मागीरी की टाँग अड़ा देते हैं, मुझे

---

बहुत बुरी लगती है। वह कहते हैं कि केवल उनका 'हरिजन' अखबार है, बाकी सारे का सारा कूड़ा, नापाक। वह कहते हैं कि विज्ञापन न लो, सनसनी को—मनचले न दो, अखबार नहीं—'रघुपति राघव राजा राम' निकालो। वह यह नहीं सोचते कि यह जर्नलिज्म नहीं उसकी जड़ काटने वाली सलाह है। सभ्य संसार में जर्नलिज्म एक माना जाता है आर्ट—टेकनीक—ट्रेड है। जब-जब गान्धी जी बेसमझी बातें करते हैं तब तक मेरे दिल में आता है कि वह हिमालय चले जाते तो बेहतर। उनका ध्येय हिन्दुस्तान को आज़ाद बनाना था सो पूरा कर चुके।"

"हिमालय महात्मा जी सौ जन्म न जायंगे।" ज्योतिषी ने सहज भविष्य सत्य कहा सुरावेश में।

"महात्माजी को हिमालय भेजना" मोड़े ने कहा—"महा मूर्खता होगी। वह 'स्पेण्ट फोर्स' नहीं, दुनिया जानती है। वह एटम बम से घायल विश्व के हृदय पर शीतल अमर लेप हैं। उनकी हमें अभी बहुत ज़रूरत है।"

"गान्धीजी प्लेटफार्म के बादशाह" पत्रकार ने लीडर को सुनाया—"तू प्लेटफार्म का गुलाम, हुक्म का गुलाम, अन-आरिजनल—अमौलिक, हाई कमाण्ड का ग्रामोफोन—हिज मास्टर्स वायस! तू राजनीति नहीं समझ सकता, भले ही वोटों के बल राजदण्ड पा जाय। गान्धीजी के हिमालय जाने से तू तो रसातल चला जायगा। अरे उस्ताद! तेरी तो पाँचों घी में बापू के भी साथ, बैताल के भी!"

"मैं 'फेथ' नहीं पालिसी मानता हूँ—गान्धी की नीति या राजनीति को।" ज़रा झेंपकर माया मुकुन्द मोड़े ने मंजूर

किया—"चर्खे में मेरा विश्वास नहीं, कभी चलाया हो तो कसम ले लो। खद्दर में मेरा विश्वास नहीं, हमेशा सिल्क ही पहनता हूँ, दीन जीवन मुझे पसन्द नहीं—चर्चिल की तरह—कार मेरी ब्यूक प्रसिडेण्ट। इतने पर भी अगर कोई आरिजिनेलिटी न परखे तो हो चुका आज़ाद यह देश!"

"ऑरिजिनल! ऑरिजिनल!! चिल्ला उठा सम्पादक प्रमोद—"तू मोड़े, भारी ऑरिजिनल - महा मौलिक मानव रे! क्रिमिनलों की काल कोठरी से निकल कर तू विधान परिषद् में आया, सेक्रेटेरियट में पहुँचा; गड़ेरिया बन ग़रीबों को भेड़ों की तरह चराया, ऊन काटे, गले मारे और धनी गनी बन बैठा, जिसके सात पुश्त थूक भरी ज़मीन पर तलवे रगड़ते रहे, वह लक भरी ब्यूक पर चलता है।"

"कुछ भी मैं करूँ पर करनी कुछ करके करता हूँ—सारी ज़िन्दगी खटा, जेलों तपा, २१ देखा, ४२ देखा तब उस जगह पर पहुँचा हूँ। जलता क्यों है कलम कसाई?" मोड़े भी आखिर नशे में ही था—"अपकी तो निबेड़! दूसरों की रोग बला, गर्मी सूजाक, स्वप्नदोष, निन्दा और द्वेष पर ही तो चरित्र हीन पत्रकार की मौलिक-माया टिकी है। कहूँ तो नशा हिरन हो जायगा। पत्रकार ही आज की दुनियाँ के गले में अनीति का फन्दा कसे हुए अमीरअली ठग है और सारी पत्रकार कला है एक शब्द में—ठग वृत्तान्त माला।"

ज्योतिषी को पत्रकार और लीडर की लड़ाई खल गयी यों कि देर से वह गाँधीजी का मरण मुहूर्त बतलाने को व्याकुल था।

"लड़ते क्यों हो?" उसने दोनों से कहा—"गान्धीजी हिमालय में नहीं, मरेंगे मैदान में—आज नहीं १२५ बर्ष की उम्र

में—५६ साल बाद। तब तक हम में से कौन रहता है, कौन देखता है। गान्धी जी जब मरेंगे तब शनि शत्रु राशि में चला जायगा, शनि में शनि का अन्तर और अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तर होगा—वही क्षण महात्मा के लिए प्राण-वियोग कारक प्रमाणित होगा।"

नौकर ने आकर अदब से सूचित किया कि खण्डालावाला साहब से सी० आई० डी० इन्सपेक्टर विक्टर मिलना चाहता है। कहता है, बहुत जरूरी काम है।

"बोलो बैठें बाहर!" बिगड़ा बड़ा अफ़सर—"दिनों गायब-गुल रहने के बाद आया है जरूरी खबर सुनाने। मैं इसे निकाल दूंगा। मैंने आफिस भर को सुना दिया है। यही सुनकर हरामखोर खुशामद करने आया होगा। मुझे उल्लू बनाने। बोलो—बैठे। साहब को अभी फुर्सत नहीं।"

नौकर सकपकाकर उल्टे पाँव लौटा। खण्डालावाला ने गिलास खाली किया। फिर सिगरेट सुलगा कर बोला—

"खुदा के लिए मरने का यह सब्जेक्ट ही छोड़ दिया जाय तो बेहतर। शराब के रंग में गान्धीजी की चर्चा ही बेमौजूं। इस वक्त तो किसी ऐसे फिलासफर का किस्सा छिड़े जो पीने वाला हो या रहा हो—जैसे - अरे साला—नाम याद नहीं आ रहा।"

"जैसे सुकरात" मोड़े ने कहा। और पारसी उछल उठा—"वही वही—मैं उसका नाम भूल रहा था। वह महात्मा से कितनी सदी पहले जन्मा—महात्मा; यूनानी, महा दार्शनिक। वह डटकर पीता और ज़िन्दगी का नाम ज़िन्दा दिली बतलाता था।"

"सुकरात ज़िन्दा दिल था, पर अमीरी पसन्द नहीं था।

वह मोटा मैला कपड़ा पहनता, नंगे पाँव घूमता और सबकी कल्याण-कामना करता था'' मोड़े ने बतलाया--पीने का एक दोष उसमें न होता तो ईसामसीह से पाँच सौ साल पहले और महात्माजी से उन्नीस सौ बरस पहले उसने वही करतब किये थे जो पैगम्बर करे।"

"अरे साला वह पीता भी था तो मामूली 'पियक्कड़' की तरह नहीं" खण्डालावाला बोला—"वह पीता था बंशंकर की तरह। नशा ही नहीं हलाहल 'हेमरॉक' भी।"

"अजी" दैवज्ञ देवदत्त ने तुक भिड़ाया—"पीना मनुष्य की प्रकृति में है। विश्वास न हो तो 'गरुड़ पुराण' में देखो, इन्सानी चोले की कलई खोलकर रख दी गयी है जिसमें। एक आदमी की देह में क्या-क्या है—रक्त, हाड़ माँस तक का वर्णन, नसों-रोओं तक की गिनती। उसमें लिखा है साफ़ कि आदमी की देह में ही शराब होती है। भीतरी मद का प्रमाद सभी को होता है—'पीत्वा मोहमयी प्रमाद मदिरा मुन्मत्त भूतवा जगत' भर्तृहरि ने लिखा है। गान्धीजी जब-जब मद्य निषेध पर ज़ोर देते हैं तब तब मुझे हँसी आती है--असम्भव बात। समुद्र मन्थन में वारुणी निकली है—१४ सत्य रत्नों में से एक है, अमृत और लक्ष्मी की भगिनी है शराब। सोमपायी ब्राह्मणों ने समझा था इसे। बनिया क्या समझेगा---बकरी का दूध पीने वाला।"

"सुकरात तो खूब ही पीने वाला था" मोड़े ने दर्शन परिचय दिया---"गान्धी जी चेलों के साथ जैसे चर्खा चलाते सूत यज्ञ करते हैं वैसे ही सुकरात अपने चेलों के साथ पीया करता था। वह चुक्कड़ से नहीं मटके से पीता था। डटकर पीने के बाद, इन्तहाए नशा में उसे होश आता और ब्रह्म ज्ञान की

बातें। गान्धीजी के चेले बड़े-बड़े हैं हैं बेशक पर सुकरात के चेले, कुछ छोटे-छोटे न थे। उनमें अफ़लातून था, अरस्तू था, कितने बड़े-बड़े कवि, नाटककार और साहित्य विधाता थे।"

"अरे साला!" पारसी को कुछ याद आयी—"एक बार कलवरिया में बड़े-बड़े यूनानियों के संग सुकरात पी रहा था और चर्चा छिड़ी प्रेम की। यही कि प्रेम है क्या आख़िर? कौनसी बला?"

"हाँ-हाँ, खूब प्रकरण याद आया!" मोड़े ने प्रशंसा भरे स्वर से कहा—"मैंने भी वह घटना पढ़ी है। एक ने जवाब दिया था कि-प्रेम परम प्राचीन देवता है--सबसे ज्यादा शक्तिशाली। तभी तो प्रेम में मामूली मनुष्य भी बड़े-बड़े काम कर गुजरता है। प्रियतम के सामने कायरता दिखाने से वह मर जाना बेहतर समझता है। मुझे प्रेमियों की एक प्रेम-पलटन कहीं मिल जाय तो मैं पृथ्वी को पराजित करके रख दूँ।"

"कर चुकी प्रेम-पलटन पृथ्वी पर विजय" --पत्रकार प्रमोद टेबुल पर की सभी गिलासों में पांचवा पेग भरते-भरते बोला—"प्रेम-पलटन न तो कभी थी, न आज ही तैयार की जा सकती है। आज के हवाई युग, एटमी-युग, गन युग में अस्त्रहीन, शस्त्रहीन दुर्बल प्रेम-सेना क्या कर सकती है?"

"क्या कर सकती है? सुख की रास रच सकती है पवित्र प्रेम-सेना—" दैवज्ञ जी सनके—"एटम बम करोड़ों रुपये में जो काम नहीं कर सकता वही कत्लेआम प्रियतम के जुबिशे अब्रू से एक मुहूर्त-सेकेण्ड मे हो जाता है। प्रेम-युद्ध कैसा मधुर! लड़ते हैं मगर हाथ में तलवार भी नहीं! गन तो दूर की बात। मैशीनगन पर तो लानत!"

---

जब सारा आलम सोता है--

"बहकिए नहीं—सीरियस चर्चा में—" पत्रकार ने ज्योतिषी को ललकारा—"प्रेम की ऐसी बातें खयाली कवि ही कर सकता है, पालिटीशियन नहीं। सुकरात ने जिस जनतन्त्र की कल्पना की थी कवि को उसके बाहर निकाल दिया था, कान पकड़ कर! देश के व्यवस्थापक दार्शनिक बनाये गये, निस्पृह!"

"कवि क्या दार्शनिक नहीं, निस्पृह नहीं?" दैवज्ञ ने तमक कर पत्रकार से प्रश्न किया।

"है कवि दार्शनिक, पर निस्पृह मैं उसे नहीं मानता" पत्रकार ने उत्तर दिया—"उलटे स्पृहा के ही चश्मों से वह दुनिया के नवों रंग देखता, अनुभव करता, गाता-रोता है। वह भ्रमर है—कली-कली गली-गली का रसग्राही। कवि दार्शनिक उसी रंग का जिस रंग का गिनी-गोल्ड। कसौटी पर कसिए तो असली सोना कुछ और चीज। वैसा ही निष्काम कर्मवीर सर्व हित चिंतक विज्ञानी दार्शनिक होता है।"

"असिल सोना हिरण्यगर्भ कवि है।" दैवज्ञ देवदत्त अड़ गया—"कवि भगवान का एक नाम है—'कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू'। वेदों के मुँह से निर्गुण के बहाने अपना गुण गा कर कवि सत्य को अक्षर बना देता है। कल्पना को सत्य और शाश्वत। सुकरात ने जिस जनतन्त्र की कल्पना मात्र की उसी का एक्सपेरिमेण्ट भगवान परशुराम ने दार्शनिक ब्राह्मणों को दुनिया का जन राज्य दे-दे कर एक नहीं इक्कीस बार किया।"

"वेरी गुड! मोड़े ने दाद दी पंडित की सूक्ष्मसमताकी—"यह सही है—कि आर्यों ने यूनानियों से लाखों बरस पहले जनतन्त्र का सफल एक्सपेरिमेण्ट किया था, पर परशुराम को

मैं ठोस ठण्डा दार्शनिक मानता हूँ न कि कल्पनाशील कवि, तुक बन्द रागिया ।"

"परशुराम केवल कवि नहीं" ज्योतिषी ने जवाब दिया-- "वही दशों अवतारों में आदि महाकवि हैं। सुकरात के लकड़ दादा से करोड़ों वर्ष पहले परशुराम ने दुष्टों--फासिस्टों--का दमन कर सर्व हित चिन्तक उसी जनतन्त्र की कल्पना प्रत्यक्ष कर दिखायी थी--जिसके व्यवस्थापक सर्वस्वत्यागी दयालु ब्राह्मणथे दार्शनिक। कोरा दार्शनिक केवल कल्पना कर सकता है, सृष्टि, नहीं निर्माण नहीं। इसी बात में कवि दार्शनिक से बड़ा, विश्व विधाता का नामारासी है। परशुराम ठण्डे दार्शनिक नहीं, अग्नि दर्शन थे जिनके कृपा-कृपीट में जल बल जलकर संसार का सोना पापमालिन्य रहित उज्वल हो उठा था। एक नहीं इक्कीस बार। तब जन राम-राज्य कायम हो पाया। और परशुराम कवि थे तटस्थ, निर्लिप्त, निष्काम कर्मवीर, रणधीर शिरोमणि इक्कीस बार विश्व विजय करने वाले उस ब्राह्मण ने इक्कीस कौपीनें भी तो न लीं। राम-राज्य कायम होते ही भरत खण्ड तक का त्याग कर दिया था भार्गव भगवान ने। वह किसी दूसरे दूरस्थ द्वीप में जाकर राम भजते थे। परशुराम भगवान महाकवि थे, शिवदत्त प्रचण्ड परशु उनकी प्रतिभा, प्रलय छन्द, ताण्डव गति, आनन्द भैरव राग। परशुराम की तुलना मे सुकरात--हिमालय की तुलना में भुनगा। कवि की तुलना में दार्शनिक--विराट रूप की तुलना में बहुरुपिया।"

" 'आइ बेट !'--खण्डालावाला ने चमक कर कहा-"अब पंडत फार्म में आगया है; जैसे दो साल पहले ढापिंग के बाद घोड़ा 'ब्लैक हुसार'। एक एक मिनट में एक एक रेसा जीता नशे

---

जब सारा आलम सोता है--

में वह घोड़ा। वैसे ही एक एक मिनट में ज्योतिषी जी अक्ल के घोड़नों को हटा रहे हैं। खूब सपोर्ट किया परशुराम का—सुबहानअल्ला !"

इसी वक्त पीछे-पुलीस लगे चोर की तरह इन्सपेक्टर विक्टर भागता आता नजर आया—पीछे पुकारता, चिल्लाता, मनाकरता नौकर। इन्सपेक्टर की इस हरकत से हैरान खण्डालावाला गुस्से से काँपता हुआ खड़ा हो गया।

"ह्वाट इज़ इट मीन! (इसके मानी क्या?) उसने डाट कर पूछा—"बिना बुलाए हमारी प्राइवेट पार्टी में तुम कैसे घुस आये? बाहर जाइए! जाओ! मैंने तुम्हें बरखास्त किया!",

"मुझे बरखास्त कर दें, मार डालें" विक्टर ने कहा—"पर मेरी बातों पर एतबार करें। दस दिन पहले मैंने कहा था, नेताओं के विरुद्ध घातक षड़यन्त्र चल रहा है—और आप महज हंस दिए थे, मुझे गपोड़ शंख मान कर। मैं कहता हूँ आज ही कल में महात्मा गांधी की जान पर हमला होने वाला है। यह सूराग नागपुर जबलपुर-ग्वालियर की खाक छानने के बाद मुझे लगी है और झूठ नहीं है। आप कम से कम अभी टेलीफोन कर दिल्ली की पुलीस को 'एलर्ट' तो कर दें।"

"तुम जाओ! उपदेश हमें न दो!" सी० आई० डी० सरदार खण्डालावाला तमका—"सिखाओ मत मुझे! तुम इन्सपेक्टर होने काबिल नहीं, 'क्रुक' हो, खयालों खिचड़ी पकाने वाले। होने दो कान्सपिरेसी, मरने दो मरने वालों को—मैंने किसी की जानका ठेका नहीं लिया है। भागो यहाँ से। मेरा नशा खराब न करो। मेरा नशा खराब होता है। कह दिया।"

इन्सपेक्टर आत्तमुंह बनाये सर झुकाकर बाहर चला गया।

---

दौर फिर चली। ज्योतिषी ने पुनः भविष्यवाणी की--

"१२५ वर्ष के होने के पूर्व महात्माजी मर ही नहीं सकते। मरेंगे तब जब शनि में शनि का अन्तर और अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तर होगा। श्लोक तत्सम्बन्धी प्रमाणिक यह है--"

क्रूर ग्रहदशा काले
क्रूरस्यान्तर दशाग में
मरणमं तस्य जातस्य
भविष्यति न संशयः

"मैं कहता हूँ, महात्मा जी की चिन्ता सरकार करे--" मोड़े ने राय दी।

"सरकार कुछ भी नहीं कर सकती"-खण्डालावाला तीखा बोला--"गाँधी जी की चिन्ता परमात्मा ही करे जिस पर महात्मा भरोसा करते हैं, पुलीस, सेना पर उनका विश्वास नहीं, ताज्जुब बात है।"

"उनका विश्वास 'यूरोपियन. खामखयाली पत्रकार प्रमोद ने असन्तुष्ट भाव से कहा- 'दुश्मन मारे, तुम दया दर्साओ, आग लगा दे तो तुम प्रेम बरसाओ, बच्चे हलाल करें, औरतें उड़ा ले जायं पर तुम अहिंसक बने रहो, विश्व-प्रेमी। गाँधीजी ने कान्फरेन्स में ही कहा था कि वह भारत राष्ट्र को ऐसा तैयार करना चाहते हैं जिसका एक-एक बच्चा मौके पर विश्व कल्याण के लिए आत्म बलिदान कर सके। राजनीति पाँच गांव-सुई की नोक बराबर जमीन भी दुश्मन को देने को तैयार नहीं;फिर अपना चचेरा बड़ा भाई या राजा युधिष्ठिर ही क्यों न हो। -महात्मा जी सारा राष्ट्र कुरबान करने को तैयार!"

"यह चर्चा ही अप्रिय" खण्डालावाला ने कहा"--हमें एक

---

बार फिर सुकरात के मैवाने वाली चर्चा पर आ जाना चाहिए। ग्रीक महा पंडितों की उस पार्टी में से एकने तो प्रेम की परिभाषा बतलायी काबिले तारीफ़--उसके मनमें युगों पहले स्त्री-पुरुष एक ही शरीर गोल-मटोल, चार भुजाएँ चारही चरण और दो मुख-बड़े मजबूत-बड़े तेज-बड़ो दिग्विजयिनी-जाति नारी नरोंकी ऐसे दोदेदार कि एक बार स्वर्गपर कब्जा करने की तबीयत उनकी हुई! इस पर घबड़ाकर देवराज ने तय किया कि क्यों न इन्हें काट-कर दो कर कमजोर कर दिया जाय। और देवराज ने वही कर दिखाया जो निश्चय किया। तभी से नर नारी अपनी कमजोरी पहचान कर एक दूसरे में घुल-मिल जाने की कोशिश करते हैं—इसी मिलन का नाम है प्रेम। हा हा हा हा!"

"प्रेमकी··महर्षि सुकरात ने क्या परिभाषा की?" ज्योतिषी ने पूछा।

"सुकरात ने कहा" मांड़ बोला-कि "आपलोग जैसे विद्वान वक्ताओं की प्रचण्ड प्रेम परिभाषाओं के आगे मेरी गति मूढ़ हुई जा रही है। क्या बोलूं? मेरी समझ में आदमी को देवता बनने की इच्छा का नाम ही प्रेम है। प्रेमी सौन्दर्य खोजी ही नहीं सुन्दरता का सर्जक भी है, उसे शाश्वत रूप देने का अभिलाषी, मरणशील शरीर क्षेत्र में अमरता का बीज वपन करने वाला। स्त्री और पुरुष एक दूसरे को रमण कर आत्मा को स्वरूप देते हैं और इस तरह अपने अमरत्वकी श्रृंखला अनन्तके छोर तक पहुँचाते हैं। यही कारण है कि आदमी बच्चे ही नहीं शाश्वत सौन्दर्य की तलाश में अपना संगी, सहकारी, उत्तराधिकारी भी पैदा करता है। और क्या है वह सौन्दर्य जिसे शाश्वत रूप देने के लिए हम जन्मते-मरते हैं? वह है सद्विवेक, सद्गुण,

सुशक्ति, सन्मान, न्याय और विश्वास। एक शब्द में 'सुन्दरम्' का अर्थ है 'सत्यम्' और सत्य ही परमात्मा के पदों तक पहुँचाने वाला सन्मार्ग है।"

"इसमें नया क्या कहा सुकरात ने? ज्योतिषी जी चहके— "हमारे यहाँ लाखों बरस पहले कहा गया था—आत्मा वै जायते पुत्र। पिता का आत्मा पुत्र, उसका आत्मा उसका पुत्र, इसी तरह एक ही अनेक रूपमें—और छोर हीन। सत्य शाश्वत जो ऋषियों ने कहा वही सुकरातने कहा और वही कहते हैं महात्मा गाँधी।"

"लेकिन ऋषियों की बातों में फोर्स ज्यादा था" पत्रकार ने राय दी—"वह सोमरस पीने के बाद ही कुछ बोलते थे। गाँधी बिना पिये ही कहते हैं—अरे सोमा, सोमा?"

सोमरस की याद आते ही मेजबान प्रदीप को स्मरण आया कि बातों के बतंगड़ में मेहमानों ने अभी कुछ खाया नहीं। सोमा ने सामने आकर सलाम किया—

"अरे बापू!" शराब के नशे में मालिक नौकर से ही मजाक कर चला—"कुछ खाना वाना भी तैयार है या हमारी तरह तू भी बिना पिये ही शाश्वत सत्यकी तलाश में था?"

"तैयार है हुजूर।"

"क्या तैयार है? कितने बजे?"

"ठीक पाँच बजे हैं" "यह भी कोई खाने का वक्त!" मोड़े अभी पीना ही चाहता था—"पीते वक्त खाना पेटूपन है वह जिसमें नशेकी मस्ती का मजा ही नहीं आता।"

"अरे अब तो कृपा करो देश भक्त जी" देवज्ञ ने ताना दिया नेता को—"इस वक्त महात्मा जी दिल्ली मे प्रार्थना करते होंगे।"

---

जब सारा आलम सोता है—

"प्रार्थना में मेरा विश्वास नहीं"—मोड़े ने सदम्भ कहा—राजनीति और धर्मका गुड़ गोबर घोल देश की वर्त्तमान अवस्था में घातक होगा। राजनीति राजनीति है, धर्म धर्म। सबसे प्रेम ही कीजिये, दण्ड को चूल्हे में जलाकर साग उबालिये, साथ भी रखिये, लकड़ी भी ; किसान रखिये, जमींदार भी; मजदूर रखिये मालिक भी। चल चुकी यह व्यवस्था। टिक चुका यह स्वराज्य। प्रार्थना प्रार्थना। जब पालिटिक्सकी जरूरत तब प्रार्थना से क्या होगा?"

"प्रार्थना की रेडियो रिपोर्ट सुने" ज्योतिषी रेडियो की मशीन की तरफ़ झपटा, किंचित लड़खड़ाता—"कभी कभी भजन अच्छे गाये जाते हैं। किस मीटर पर दिल्ली बोलती है?"

"आपके रेडियो सेट की किस मीटर पर दिल्ली स्टेशन है!" पत्रकार ने पूछा —

"मैं" ज्योतिषी ने मंजूर किया—"मीटर सेण्टीमीटर की माया में न पड़ रेडियो की मशीन की मूंठ घुमाता जाता हूँ और कहाँ से दिल्ली बोलती है कहाँ से बम्बई मुझे मालूम नहीं।"

"३० मीटरपर सुई लगाइये। खण्डालावाला ने रेडियो ज्ञान दिखाया। देवज्ञने वैसाही किया, मशीन में साँय-साँय स्वर भरने लगा पर-पर आवाज नहीं आयी।

"मारो गोली प्रार्थना में!" नेता मोड़े ज्योतिषी पर तन्नाया "मजे के वक्त खलल की बातें न करो। देश के दो टुकड़े हो गये, शान्ति के सौ टुकड़े और हमारे नेता प्रार्थना ही करते रह गये। सर्वस्व लुटा जा रहा है, हम प्रार्थना कर रहे हैं। बन्द करो! चलो इधर!"

"चलो इधर! चलो इधर!!" तीनों ने ऐसा ललकारा कि

ज्योतिषी रेडियो छोड़ टेबुल पर चला आया। पारसी ने कहा–

"प्रार्थना चाहे जब हो हम तो दो पहर से ही प्रेम-चर्चा कर रहे हैं।"

"मगर चर्चा आपकी रही पछाँही प्रेम की" ज्योतिषी ने कहा "सुकरात याद आये पर श्री कृष्ण याद नहीं, भारतीय कवियों की प्रेमोक्ति किसी ने न सुनी।"

"एक शेर कहो तो मैं सुना दूं।" पारसी ने कहा–"पर खाना ठण्डा हो रहा है, पुलाव-कबाब का दम निकला जा रहा है, रोग़नजोश ठण्डा पड़ा जा रहा है। पहले खा लिया जाय, फिर प्रेम–चर्चा हो।"

"पहले शेर सुनाओ।" मोड़े ने आग्रह किया।

"पहले शेर।" प्रदीप ने समर्थन किया।

खण्डालावाला सुना चला—

"हम तर्जे इश्क से तो वाकिफ नहीं हैं लेकिन....."

और पत्रकार के साथ मोड़े ने दुहराया:–

"हम तर्जे इश्क से तो वाक़िफ़ नहीं हैं लेकिन....."

खण्डाल वाला––

"सीने में जैसे कोई दिलको मला करे है।"

वाह-वाह, वाह-वाह की धूम मच गयी। पर ज्योतिषीजी न हिले:––

"किसका शेर है? सचमुच वह तर्जे इश्क़ वाक़िफ़ नहीं। सीनेमें जैसे कोई दिल मल रहा है, इसमें 'मल' है, स्वच्छ दर्शन नहीं।"

"यह शेर 'मीर' का है और बहुत बढ़िया है" खण्डालावाला

ने दावा किया—"पर उससे भी बढ़िया है उस्ताद ग़ालिब का यह शेर:—

'इश्क़ में तबीयत ने ज़ीस्तका मज़ा पाया।
दर्द की दवा पायी दर्द बे दवा पाया'॥

"यह शेर शेर है' देवज्ञ समझता था—"ज़ीस्त का मज़ा, दर्द बे दवा—निहायत बढ़िया शेर यह है। फिर से कहिये।"

"अब आप कुछ फर्माइये" पारसी ने पण्डित से कहा—"ज़रा अपने प्रेमकी बानगी पेश कीजिये।"

"मुझे तो कुछ याद नहीं रहा"—ज्योतिषी बोला—"हां कबीरदास ने कहा है कि:—

'एक मेक होइ सेज न सोयी-तब लगि कैसो नेह रे!'

प्रियतम से एक होना ही प्रेमकी सफलता-प्रेम में दुई ना काबिले बरदाश्त:—

'प्रेम गली अति सांकरी यामें द्वै न समाई।"

प्रमोद ने आलोचना की:—

"उर्दू की तरह हिन्दी कविता में जोश नहीं।"

"हिन्दी कविताएँ जोश नहीं, होश में लिखी गयी हैं।" पण्डितने पक्ष लिया हिन्दी का।

"मगर उर्दू कवियों की बेहोशी भी बड़ी होशियार—प्रेमपर 'नज़ीर' का कलाम है:—

"दिल अपना भोला-भाला है।
और इश्क बड़ा मतवाला है॥
क्या कहिये और नज़ीर आगे।
अब कौन समझने वाला है।"

"वाह-वाह!" मोड़ेने लपक कर पारसी के दोनों गाल चूमते

---

चूमते काट खाया ।

"अरे साला !" चिहुँका खण्डाला वाला "मैं माशूक नहीं !"

"बस भाई !" पत्रकार ने कहा "प्रेम की इसी गर्मी में पोलाव पर मुँह मारिये ! बिसमिल्ला: !"

"बिसमिल्ला: !" पारसी ने प्रतिध्वनि की ।

"ॐ तत्सत !" गर्ज कर ज्योतिषी ने कहा और हड्डीले मांस का एक टुकड़ा माथे से लगा कर मुँह तक ले गया । अभी भी किसी का नेवाला गलेसे नीचे उतरा न था कि रेडियो से पड़ा—

"यह दिल्ली है !"

"प्रार्थना का रिले ! सुनिये !" पण्डित प्रसन्न बोला ।

"मारो गोली !" पत्रकार ने तिरस्कार से कहा ।

"—गोली-मार दी गयी महात्मा जी को !" रेडियो से आवाज आयी ।

"झूठ बात !" सब का ग्रास मुँह से बाहर निकल आया । मगर रेडियो बोलता ही रहा अशुभकारी स्वर में—

"प्रार्थना के लिए जाते हुए राष्ट्रपिता को, नाथूराम विनायक गोडसे नामक महाराष्ट्रीय नौजवान ने पिस्तौलसे चार गोलियाँ फायर कर शहीद बनादिया ।"

———

# आज़ादी से आठ दिन पहिले

खण्डवासे बम्बई में रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठ रहा हूं। अगस्त ४७ के दूसरे सप्ताह के आरम्भ में बम्बई इसलिये पहुँच रहा हूँ कि १५-१६ अगस्त को हरेक तमाशा पसन्द आदमी को दिल्ली या बम्बई में होना ही चाहिये। ऐसा तमाशा सदियों सहस्त्राब्दियों में भी-देखने को सहज नहीं मिलता।

गाड़ी का डिब्बा सोलह सीटर जिसमें से—मेरे बैठते वक्त—बाहर निकलता कोई क्रिस्तान परिवार; १२, १४, १६ वर्ष की तीन स्वस्थ्य लड़कियाँ, तगड़ी माँ, पाया प्लेटफार्म पर।

"आओ जल्द नीचे!" पिताने परिवार को प्लेटफार्म पर से पुकारा। लड़कियाँ लपकीं भी—उसी उजलत से जिससे हमलोग ट्रेन में घुसते या बाहर निकलते हैं—अभिभूत होकर! मगर माँ साहब मज़बूत:—

"ठहरो, पहले सामान बाहर उतर जाने दो!"

मेम साहब के हुक्म से कुली ने इस सावधानी से डिब्बे की सीटों को साफ़ किया कि मेरा बिस्तर भी ले जाते-जाते बचा!

( २ )

ट्रेन चलने पर चारों ओर की परीक्षा से प्रकट हुआ- डिब्बे में कुल पाँच आदमी। एक मुसलमान फ़ौजी, एक हिन्दू और एक ही सिख। मेरे सामने बैठे खण्डवा के एक उग्र सोशलिस्ट

बातें करते धार बाहिक। नमक खा, पानी पीकर कोसते-

"ये राष्ट्रीय अपने को कहते हैं, कहते हैं स्वराज्य ले लिया-अजी उंग्रजी! ये डरते हैं क्रान्ति के दाहक दावानल से। स्वराज्य होगा? हुँ! बिना युद्ध न कहीं कुछ हुआ है। कांग्रेस हाईकमाण्ड अंग्रेजों से डरता है--तभी तो स्वराज्य हो जाने पर भी जिस विभाग को देखो उसीका 'हेड' गोरा!"

"बहुत सी बातें अभी हमें अंग्रेजों से सीखनी होंगी कि नहीं!" मैंने कांग्रेस रुखके समर्थन में कहा।

"कुछ भी अंग्रेजों से नहीं सीखना है।" ताव से तमक कर दोस्त सोशलिस्ट ने कहा-"हममें योग्य जिम्मेदार आदमियों की कमी नहीं। फिर लार्ड माउण्टबेटन ही आजाद भारत के गवर्नर जेनरल क्यों चुने गये? अजी हमें आदत पड़ गयी है दादा--चाचा ताऊकी अँगुली पकड़ कर चलने की।"

"लार्ड माउण्टबेटन ही पहले गवर्नर-जेनरल क्यों चुने गये? यह सवाल जब कुछ लोगोंने हमारे एक भड़कने वाले महानेता से पूछा तो उन्हों ने क्या जवाब दिया था--आप भूल गये? उन्होंने कहा था--लार्ड माउण्टबेटन इसलिये चुने गये हैं कि उन जैसा योग्य और विश्वस्त आदमी इण्डिया में नहीं है।" मैंने पुनः कांग्रेस-पक्ष ग्रहण किया।

"इसे कहते हैं आत्महीनता या 'इनफीरियरिटी काम्प्लेक्स' इसे कहते हैं गुलाम मनोवृत्ति" बहुत बिगड़े सोशलिस्ट भाई--"इण्डियामें विश्वस्त आदमी नहीं! फिर यह आजादी की लड़ाई क्या बेईमानों की सेवा से जीती गयी है? असल बात वैसी ही जैसी दो लड़के एक ही गुलाबजामुन पर लड़ते हैं अन्त में उसे स्वयं न खा कुत्ते को दे दें-पर पड़ोसी मित्र को नहीं! जब तक

हम इस मनोदशामें हैं हरगिज आजाद हो नहीं सकते।

"फिर ये कांग्रेसवाले अब बूढ़े पड़ गये, पुराने। आगे जमाना सोशलिस्टों का है जिनके पास सेना है लाखों का संगठन है अमूल्य, मूल्यवान प्राणों को मौकेपर यज्ञ में आहुति की तरह होम देने की हौंस है! पचास हजार हम लोग बरार विजय के लिए यवतमाल जा रहे हैं। फलां तारीख को निजाम पर चढ़ाई कर उसे हम मसल कर रख देंगे, हम सोशलिस्ट हैं-क्रान्तिकारी। हमें साग-भाजी भक्त अहिंसक गांधीवादी कोई न समझे।"

अगले स्टेशन पर सोशलिस्ट भाई अपना दल संभालते नीचे उतरे और टिकट चेकर आया। आतेही उसने शिकायत शुरू की-ये ही लोग कांग्रेस और लीग दोनों को बदनाम करते हैं--दोनों ही से बुरे हैं। बिना टिकट पूरी पार्टी सफर कर रही है। पूछने पर कहते हैं हमारा कमाण्डर आगेकी डिब्बे में है--पर न कहीं कमाण्डर न असमाण्डर। ये जा रहे हैं बरार विजय करने! पूत के लच्छन पालनेपर! यह मुँह और मसूर की दाल!!

( ३ )

मगर मैं भूला! डिब्बे मे एक सज्जन और थे जो ऊपर की बर्थपर मूँछें खड़ी किये, माथेपर मंडेहर की तरह पीला चन्दन छापे आराम फर्मा रहे थे। अगले स्टेशन पर जब आबकारी डिपार्टमेण्ट के सिपाही मुसाफिरों की जाँच करने आये तब उनकी उपस्थितिका एहसास मुझे हुआ। मेरे पास तो जाँचने काबिल कोई सामान था ही नहीं और दूसरे तीन यात्री पलटनिये, सो, आबकारी वालों की नजर ऊपर वाले दोस्त ही पर तीव्रता से पहुँची--

"आप कहां जा रहे है?"

---

—आजादी से आठ दिन पहिले

"नासिक……"

"इन गठरियों में क्या है ? क्या है इस डिब्बे में ?"

"गठरियों में आटा, चावल, दाल है और डिब्बे में घी।"

"तुम जानते नहीं आज कल राशनिंग और कण्ट्रोल का जमाना है ? आटा, चावल, दाल एक जगह से दूसरी जगह ले जाना गुनाह है।"

मगर जमादार मैं भरतपुर से आ रहा हूँ। नेमधर्म से रहने वाला --पितरों की प्रीति के लिए तीर्थ दर्शन को निकला हूं। इस कण्ट्रोल के जमाने में तीर्थयात्री अगर समान लेकर नहीं चलेगा तो खायगा क्या ? ये तो जीवन की परम आवश्यक वस्तुएं हैं। फिर ज्यादातर चीजें मुझे जजमानों से मिली हैं।"

"बातें बहुत मत बनाओ पंडत !" आबकारी वाले जमादार ने बातें बनायी।

"जजमान तो तुम्हें पाँच सेर तबाकू दे सकता है, सेरों अफीम गाँजा, भंग, चरस, बोतलों दारू, पर तुम कानून तोड़ कर ऐसी चीजें पीठपर लाद अलानियाँ चल-फिर नहीं सकते।"

"जमादार" गिड़गिड़ाया तीर्थ यात्री-"अब आटा, चावल, दाल-अफीम, गाँजा, शराब, बन गयी !!"

"इसका जवाब अगले स्टेशन पर तुम्हें उतर कर दिया जायगा।" आबकारी वाले दूसरे डिब्बे में जिसका रास्ता हमारे डिब्बे के बीचों बीच था-घुसे; पर उनका व्यवहार किसी को पसन्द नहीं आया।

( ४ )

भुसावल। स्टेशन वाले होटल के कई छोकरे डिब्बे के सामने--"खाना लाऊं साहब ?"

---

जब सारा आलम सोता है—

"क्या ला सकते हो ?"

"राइस, चपाती, भाजी, दाल……"

"कीमत……?"

"महज़ अठारह: आने……!"

लेकिन उस वक्त अपने रामको ज़राभी भूख नहीं थी। मैंने कुछ भी मंगाने से इनकार कर दिया। पर हैदराबाद जानेवाले एक मुसलमान फौजी ने मांसाहारी भोजन के थालका आर्डर दिया। थाल आने पर मैंने देखा उसमें एक गिलास पानी, एक एक तोला आटेकी दो बेचुपड़ी चपातियाँ, एक प्लेट में ज़रा-सा कीमा रसेदार, एक प्लेट में मांस की ३-४ बोटियाँ और पके चावल कोई ढाई तोले ऐसी होशियारी से फैलाये कि देखने में बहुत नज़र आयें। थाल के साथ ही तीन भिखमंगे छोकरे भी आये और जब सिपाही खाने लगा तो छोकरे उसके मुँह-हाथ-थाल की तरफ़ बराबर गुरेरकर देखने लगे।

वे फटे हाल थे, अशिक्षित सरसे पाँव तक, असंस्कृत शायद गर्भ ही से। सरपर टोपी नहीं, पाँवमें नहीं जूते—तनपर भी कमीज़ें ऐसी जिन्हें देखकर घृणा भी नाक सिकोड़े। और वे भूखे उस सिपाही के भोजन को घूरते ही रहे।

घूरता मैं भी था—"माल कैसा है जनाब ?" मैंने पूछा। उसने बिलकुल निरुत्साह-सा उत्तर दिया—"ठीक है।"

"यह मटन ( बकरे का गोश्त ) ही है ?" सिख सिपाही ने सन्दिग्ध भाव से प्रश्न किया।

ज़ुबान को छोड़ इसका जवाब दूसरे के पास नहीं। खानेवाला खाते ही पहचान सकता है कि मटन है या नहीं। उसका स्वाद ही भिन्न होता है। मगर लोभ के आगे ईमान के उठजाने

के सबब आज हर कहीं मिलावट नजर आती है। इसीलिये मैंने तो सफर में कुछ न खाना ही उसूल बना रखा है।

भिखमंगे भारतवर फिर मेरी नजर। तीनों अभागे छोकरे अभीतक सिपाही के गरीब खाने को घुरते ! अब मैं उनपर सदय बरस पड़ा—"अभागो ! तुम किसी को आराम से खाने भी नहीं देते ! वह खा रहा है, तुम सब थाल में आँखें घुसेड़ते बेशर्मी से खड़े हो !"

तीनों अभागे मेरे तिरस्कार भरे शब्दों के धक्के से तीन-तीन कदम पीछे हट गये। जैसे मेरी निर्मम बातें उनके सीने में जगह कर गयीं। पर थे वे सचमुच भूखे। उपदेश के काल्पनिक बन्धन में संसार के गंभीरतम सत्य भूखको बांधना आसान नहीं। तीन कदम दूर से ही सही, रहे मगर वे खाते सिपाही को ही ताकते। सिपाही भी पूरा खाना ठंडे दिल से न खा सका। आधे चावल और थोड़ी कीमा शोरबेदार सबसे नजदीकी भिखमंगे के लिए उसने बचा ही ली। छोटी प्लेट में कीमे के साथ चावलों को मिलाकर उसने लड़के की तरफ बढ़ाया—जिसने फटी कमीज का अगला भाग ऊँचा किया प्रसाद पानेके लिए-लेकिन शोरबा रसीला था, कमीज खराब हो जाती--सिपाही ने अंजली में लेने को कहा। कहा कहां, सारी बातें इशारों ही में हो गयीं।

भिखारी बालक घृणित जूठन से अंजली भर कर जब हमारे डिब्बे के आगे लपका -किसी सुरक्षित जगह पहुँच कर शान्ति से खाने के लिए तब दूसरे दोनों मक्खियों की तरह झपटे अपने तीसरे साथी की तरफ -

"जरा मुझे भी-देना रे !" सब से बड़ेने हिस्सा चाहा।

"एक जीभ मुझे भी चाट लेने दे ! देख तू मेरा भाई है

---

मगा !" दूसरे ने विनय की गिड़गिड़ाहट की; पर जिसके हाथ में प्रसाद था वह पसीजा नहीं। अंजला को चुल्लुओं में बाँट दो वार में सारी जूठन वह अकेले ही चाट गया।

मेरा सर चक्कर खाने लगा। शायद इलाहाबाद एक्सप्रेस बहुत तेज़–५०–६० मील प्रति घण्टे की गति से दौड़ रही थी ! मैं बम्बई जा रहा हूँ जहाँ आठही दिनों बाद आज़ादी का गौरवमय उत्सव मनाया जाने वाला है।

आठ दिनों बाद जो आज़ादी–हमें हासिल होगी उसमें ये भिखमंगे कैसे याद रखेंगे ? ज़िन्दगी अपनी जो इस रंगसे गुज़री 'गालिब'–हम भी क्या याद करेंगे कि खुदा रखते थे।

एक बजे रात किसी स्टेशन पर नींद खुली तो नशा उतर चुका था और भूख भरपूर चढ़ आयी थी। केलेवाला आवाज लगाता चला गया। रात में भला केला क्या खाना ? चनेवाला निकला, पर ऐसे वक्त चने खाने से ये सोते हुए सहयात्री क्या समझेंगे ! फिर चाय—मगर चाय में भी क्या दम जो भंग की उतार की भूखको रोक-थाम कर सके। मैं कुछ भी निश्चित न कर सका। कुछ लेकर खाने के इरादे से जेब से निकाले दस आने पैसे मुट्ठी की मुट्ठी ही में दबे रह गये। मगर; भूख कहीं मानती है। भिखारी छोकरे ने किस जोश से उमड़ कर जूठन को खाया था ! आखिर मैं क्या खाऊं अब ?

"गरम मीठा दूध !" मीठी आवाज सुनाई पड़ी। डूबती आशा को किनारा नजर आया।

"सामने आकर रुका चौदह सालका एक छोकरा—सरपर पुरानी फेज़ टोपी ! पर अभी भी मैं 'ब्राह्मण' हूँ—देखो तो ! पर

भूख मुसलमान-हिन्दू का भेद कब समझती है। भखही में तो उस अभागे भारतीय बालक ने जूठन खाई—हायरे!—उसने सोचा होगा—इसमें क्या हर्ज है? मैंने सोचा दूध में क्या बुराई हो सकती है? दो आने कपकी दरसे एक कप देने के लिए दूधभरे डिब्बे को उसने हिलाया। पूरा नहीं, पौन प्याला उसने मुझे दिया। प्याला काँच का--मुसलमानी-रुचिरंग का था। मुंह से लगते ही मालूम पड़ा कि न तो वह गरम था और न 'दूध'! अरारोट या मीठे आटे का शरबत! मन मचलाने लगा, मगर फिर भी भूख लगी थी-कोई दूसरा चारा था कहाँ?

इतने में प्याले से खिचकर कोई आधे इञ्च की बाँसकी फाँस या काफी मोटा तिनका मेरे मुंह में जुबान ने 'डिटेक्ट' दिया। मरने के डरसे गले के नीचे उसे जाने नहीं दीया, मगर, मुंह को दूध उगल देनेकी सलाह भी जुबान ने नहीं दी—भूख जो लगी थी। मैं मुंह बन्द किये तिनके को दाँतों के निकट दबाने की कोशिश में गम्भीर होकर दूध गले के नीचे उतारने लगा। लड़के ने भी ताड़ा कि कोई दिक्कत दरपेश है। उसने सोचा, गाहक यह जाँच रहा है आरारोट के टुकड़े मुंह में चबाकर कि दूध है या कुछ और। आध इंच के तिनके से बेखबर उसने कहा--

"मलाई है हुजूर मलाई!"

———

# ३—टाम, डिक, हैरी एण्ड कम्पनी लिमिटेड

टाम अंग्रेज, डिक फ्रेञ्च और हैरी अमेरिकन—युक्त प्रदेश के रंगपुर शहर में उक्त तीनों ही शैतान से मशहूर या बदनाम विदेशी। ३० वर्ष पहले जब तीनों विदेशियों ने रंगपुर में टाम-डिक-हैरी प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी खोली तब तीनों राष्ट्रों के मानव होने पर भी उद्देश्य उनका एक था—काले लोगों का सुफेद धूर्तता से शोषण, दोहन।

इनमें अंग्रेज टाम रंगपुर का सबसे पुराना विदेशी था जिसकी शराब की एक दूकान थी और होटल, बार और बिलियर्ड का सामान। टामके दादाने सन् ५७ में एक ब्रिटिश सैनिक टुकड़ी के कप्तान की हैसियत से रंगपुर में भयानक से भयानक जुल्मकर, अमीरों को खास और जनता को आम तौरपर लूटकर बड़ी रकम जोड़ली थी। इतनी कि गदर शान्त होने के बाद सैनिक जीवन छोड़ शराब की दूकान और होटल खोलकर वह रंगपुर में मुनाफेदार रोजगार करने लगा था; जिसमें डिक और हैरी बाद में आकर शामिल हो गये थे और तभी—"टाम डिक, हैरी एण्डको' नाम की प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी कायम की गयी थी।

कम्पनी का उद्देश्य था येन केन प्रकारेण रंगपुर शहर और आस-पास के गाँवों का आर्थिक, नैतिक और साँस्कृतिक सर्व-नाशकर उन्हें मानसिक, शारीरिक और व्यावहारिक दास गुलाम बना देना। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और गोरी चमड़ी की कृपा और

रंग-क्षेत्र में उक्त कम्पनीने तीस ही सालों में जो ज़बरदस्त कमाई की उसकी गणना सुनकर दुनिया के बड़े-बड़े धनपति भी दाँतों अंगुली दाब लें। दस-दस करोड़ रुपए एक-एक हिस्सेदार के हिस्से पड़े!

यह तो नक़द बँटे मुनाफ़े की चर्चा है। इसके अलावा सारे प्रान्त में कम्पनी का विज्ञापन, शहर में आधी दर्जन बड़ी-बड़ी दूकानें, तीन-तीन मिलें और सारे जनपद के खेतों की उपज पर ९९ साला कब्ज़ा। रंगपुर और आस पास की ज्यादातर पैदावार कपास की जिस पर टाम डिक-हैरी कं० का सर्वाधिकार परमावश्यक उन तीनों काटन मिलों के सबब। इस तरह किसान और मजदूर दोनों ही कम्पनी के मायापाश से बंध गये।

रंगपुर शहर आस पास और सारे प्रान्त का शोषण टाम-डिक-हैरी कं० न कर पाती यदि चोर चोर मौसेरे, नाम की क्रिश्चियन, ब्रिटिश सरकार उनसे मिली न होती। ग़रीब भारतीयों को लूटने में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक बार जो ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने मदद दी, सो फिर रुकी नहीं। भले ही भारत का शासनसूत्र आगे चलकर कम्पनी से ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने लिया हो, पर कम्पनियां तो बराबर इस देश में बढ़ती ही रहीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को जो मुनाफा हुआ उसे तो बहुत लोग जानते हैं पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बाद जो कम्पनियाँ भारत में कायम हुईं उन्होंने कितने अर्ब-खर्ब का दोहन किया उसका पता शायद ही किसी को हो।

\+ + +

रंगपुर शहर की टाम-डिक-हैरी कम्पनी ही को लीजिए। कौन-सा ऐसा पाप, अत्याचार-अन्याय होगा जो कम्पनी वालों

ने करोड़ों जनता पर न किया हो। हमारे प्रियतम देश के रुपये अंग्रेज या गोरे लूट ले गए इसका उतना गम नहीं जितना कि उनके द्वारा हमारे अपनेपन, हमारी संस्कृति, हमारे बुजुर्गों द्वारा निर्धारित रीति-नीति नष्ट किए जाने का है। मि० टाम के होटल, शराबखाने और बिलियर्ड की बातें तो आपको मालूम ही हैं, अब फ्रेन्च गोरे डिक की गुणगाथा सुनिए। उसने तरह-तरह की मिथ्या आकर्षक फैशनेबुल चीजों को अपने देश से मँगाकर रंगपुर ही नहीं सारे प्रान्त के बाजारों को पाट दिया। काँच की चीजें, इत्र वगैरह, पाउडर-पेन्ट-लिपस्टिक, तरह तरह के सूट बूट, हैट टाइयाँ, सिगार, सिगरेट के प्रचार का परिणाम यह हुआ कि आत्मा का पुजारी देश, परमात्मा का प्रेमी प्रान्त शरीर का भक्त और राम से विभक्त हो गया।

जो सात पुश्तों से सादा जीवन बिताने के आदी थे वे ही अब जिसका राज उसी की दोहाई न्याय से वेश-भूषा और फैशन में मुक्ति देखने लगे। जिनके बाप-दादे एक जोड़ी धोती और कुरते पर सारा वर्ष गुजार देते थे वे ही अब डिक के चलाये फैशनों के दर्जनों कपड़े पास रखने पर भी असन्तुष्ट नजर आने लगे इसलिये कि उनके पास इतने सूट-बूट नहीं जितने अंग्रेजों के। सारे जनपद का स्वरूप ही इस कदर डिक ने बदल दिया कि लोगों के बुजुर्ग स्वर्ग से उतर कर देखते तो अपने ही परिवारियों को पहचान न सकते। पुराने कारीगर नये कपड़े तैयार नहीं कर सकते थे इसलिये लोग सिलाई का काम भी टाम-डिक-हैरी कम्पनी से कराने लगे। फलतः ज्यादातर दर्जी कंगाल होकर मर गुजरे। बचे वही जिन्होंने आजाद धन्धा बन्द कर कम्पनी में नौकरी कर ली।

---

उधर हैरी ( अमेरिकन ) ने हमारी कला, साहित्य और शिक्षा पर आक्रमण किया। अमेरिकन फिल्मों से अपनी नैतिकता का प्रचार भारत के भोलों में करते वह हमारे आदर्श मिटाने लगा। रंगपुर में अमेरिकन क्रिश्चियन मिशन के धन से स्कूल और कालेज खोले गये। दूसरी ओर हैरी साहब ने सबके खेतों पर या रूई की पैदावार पर एकाधिकार किया। सारी रूई बिक जाने से देश के सारे चरखे बन्द हो गये और ज्यादातर लोग लुगाई कम्पनी की मिलों में नौकरी करने लगे।

रंगपुर शहर और आस-पास और सारे देश में टाम-डिक-हैरी कम्पनी के प्रचार में सबसे अधिक ब्रिटिश गवर्नमेंट और उसके वश में रहने वाले हिन्दुस्तानी कर्मचारियों ने सहायता की यहाँ तक कि लोगों को यह पता लगाना मुश्किल हो गया कि कम्पनी सरकार की है या सरकार कम्पनी की। टाम-डिक-हैरी कम्पनी के हित के लिए किसान सताये जाने लगे। मजदूर मारे जाने, एक तरह संगीनों की नोक से कम्पनी के धन्धे बढ़ाये जाने लगे। शिक्षा, फैशन और भोग—आनन्द रंगपुर वालों की सारी जीवन पद्धति ही नष्ट कर दी गयी और सारे जन पद में हाहाकार पड़ गया।

जैसे कम्पनी की मदद ब्रिटिश गवर्नमेंट उसके नीचे अधिकारी करते रहे वैसे ही कम्पनी ने सन् ४२ की क्रान्ति के समय ब्रिटिश अधिकारियों की मदद की। कम्पनी के सभी गोरे नौकर खाकी वर्दी पहन, बन्दूक ले गावों में घुस गये अंग्रेजी सेना के साथ और दनादन गोली बारी कर आजाद होने के लिये आतुर भारतीयों को भुनने लगे। चन्दन नामक गाँव तो टाम डिक-हैरी की निगरानी ही में तबाह किया गया और सो भी किस दानवी

---

जब सारा आलम सोता है—

ढङ्ग से जिसकी याद से भी रोमांच हो उठता है।

ब्रिटिश टामियों की एक टुकड़ी के साथ कम्पनी वालों ने पहले तो चन्दन गाँव को घेर लिया। फिर एक-एक घर में घुस सारे के सारे मर्दों को बँधवा लिया, फिर सबका मालमता लूट कर सारे गाँव की अबलाओं पर बलात्कार किया गया और संगीनों पर खोंस कर कोमल बच्चों की लाशें गाँव में घुमायी गयीं। इसका नतीजा यह हुआ कि ब्रिटिश सरकार के भारत छोड़ने का निश्चय करने पर भी रंगपुर वालों के मन की धारणा कम्पनी वालों के विरुद्ध गयी नहीं। सारे शहर ने एक मत हो प्रस्ताव किया कि टाम-डिक-हैरी कम्पनी वाले विदेशी भी विदेशी सत्ता के साथ ही रंगपुर से मुँह काला करें। लेकिन ये विलायती गोरे बड़े अवसरवादी। ४२ के भेड़िये ४७ की जुलाई में भेड़ से नजर आने लगे। कम्पनी ने देशी कर्मचारियों की तनख्वाहें बढ़ा दी, बोनस बाँटे, बीती ताहि विसार कर भविष्य में मिल जुलकर व्यापार करने की अपील निकाली, पर जिनके घर उजड़ गये थे, माँ-बहनें बेइज्जत हुई थीं, भाई शहीद हुई थे, कम्पनी के कटैल कुत्तों ने साम्राज्यवादी जोश से भर जिनके जीवन को क्षत-विक्षत कर दिया था वे फिर गोरों की व्यापारिक मुस्काराहट में फँसे नहीं। महात्मा जी के प्रति अगाध सम्मान रंगपुर वालों के मन में न होता तो इसमें जरा भी शक नहीं कि कम्पनी के आततायी भागीदार और कर्मचारी जिन्दा जला दिये जाते।

और आया पन्द्रह अगस्त। और आयी शहीदों के लहूकी मेहंदी रचे आजादी। सारा देश, सारा जनपद उत्साह और उत्सवमय हो उठा। बम्बई में चार दिनों तक खुशियाँ मनायी गयीं। अन्य शहरों में तीन दिनों तक; लेकिन हमारे रंगपुर में तो

पूरे सप्ताह धुआंधार धूमधड़ाका बना रहा। लाख दुःखों के बाद भी आजादी मिलने की खुशी हिन्दुस्तानियों के मन में फूली-फैली समा नहीं रही थी।

बाजार की हवा के साथ रुख बदलने में उस्ताद टाम-डिक-हैरी ने भी आजादी दिवस कम धूमधाम से नहीं मनाया। टाम ने शराबखाने को खद्दर से सजाया, डिक ने बदमाश विलायती छोकरियों को तिरंगे जैकेट पहनाये और हैरी के सिनेमा हाउस की ऊंची खोपड़ी पर इण्डिया का राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया। झण्डा फहराया कॉंग्रेस कमेटी के देश भक्त अध्यक्ष ने और खद्दर के चूड़ीदार पाजामा, अचकन और जवाहर टोपी पहनकर टाम-डिक-हैरी तीनों ने नगर वासियों को एक पार्टी देकर प्रसन्न। किया। आजादी मुबारिक! आजादी मुबारिक!! के नारे लगाते-लगाते तीनों के कण्ठ सूख गये। उन्हें विश्वास हो गया कि रंगपुर के बुद्धू इण्डियन उनके जुल्मों को भूल गये, एतबार हो गया कि आगे भी पुरानी आसानी से वह इण्डिया का दोहन शोषण कर सकेंगे। इसी वक्त आये मिलिटरी मार्च करते कोई एक दर्जन शस्त्रधारी भारतीय नौजवान। आते ही झपट कर सैनिकों ने टाम-डिक-हैरी को घेर लिया—

"What's it ?" टाम ने किसी से न पूछ सब से पूछा।

"हम खुश हैं तुम्हारी आजादी से फिर तुम हमें छेड़ते क्यों हो ?"

फ्रेञ्च डिक ने कहा।

"मैं कहता हूँ" अमेरिकन हैरी ने बहुत ही नम्रता से कहा "आजाद होने पर भी आपको हमारे कॉंलेजों की जरूरत तो पड़ेगी ही, सिनेमा तो देखेंगे ही। आजाद लोग ही खाते पीते

हैं इसलिये टाम की होटल में स्वतन्त्र आदमी ही मजे या और ले सकता है। अतएव डिक का रूपसियों से भरा स्टेबलिशमेण्ट फैशन का सामान। मैं दावे से कहता हूं पुराने मित्र होने के सबब हम आपसे सस्ता व्यापार करेंगे। आप विश्वास करें।"

"मगर हम रंगपुर शहर के नागरिक" काँग्रेस अध्यक्ष ने ऊंचे स्वर में कहा-"गोरे नीच स्वार्थी आततायियों का विश्वास उनकी पैशाचिक रुचि देखने के बाद अब हर्गिज नहीं कर सकते। हमें तुम्हारी एक भी चीज नहीं चाहिए। न शिक्षा न सिनेमा न सूट और न शराब। हमारी और तुम्हारी भी कुशल अब इसी में है कि अपनी दूकानें बढ़ा तुम लोग अपने-अपने देश को रवाना हो जाओ। चलो....!"

बाहर बड़े बड़े मोटर ट्रक खड़े थे। विशेष हाँ—ना की नौबत क्यों आवे इसलिए सैनिकों ने बरबस उठाकर मेसर्स टाम-डिक-हैरी को लारियों पर लाद दिया, फिर टुकड़ी के कप्तान ने आज्ञा दी—

"बम्बई ले जाओ!"

तीनों गोरों के पीछे टाम-डिक-हैरी कम्पनी की सारी सामग्री भी—अच्छी तरह से पैक कर बम्बई रवाना कर दी गयी। याने खसकम, जहाँ पाक हो गया।

————

—टाम, डिक, हैरी एण्ड कम्पनी लिमिटेड

# झाऊलाल

आखिर इण्डिया आजाद हो गया। इण्डिया चिरञ्जीवी हो। इस तरह आज दुनिया का बहुत पुराना, बहुत ही संस्कृत मुल्क, भौतिक स्वतन्त्रता बहुत दिनों बाद पा रहा है।

पा रहा है के माने यह नहीं कि ब्रिटेन खैरात दे रहा है और इण्डिया पा रहा है। भारतवर्ष की यह स्वतन्त्रता किसी की कृपा का फल नहीं, हिन्दुस्तानियों की शहीदाना तपस्या का नतीजा है।

तपस्वी तो पूर्व और विशेषतः भारत के लोग सदा से होते रहे हैं। युगों से वे सच्चिदानन्द के साधक रहे, याने अन्दरूनी परिष्कार के प्रेमी। इण्डिया वालों को भौतिक या मैटिरियलिस्टिक साधनों के लिए शहीद होना योरुप वालों ने, खासकर साम्राज्य के प्यासे ग्रेट ब्रिटेन ने सिखाया। परमात्मा के लिए जर और घर दोनों ही का त्याग करने वालों को जर और घर दोनों के लिए परमात्मा तक को ललकारने की मनःस्थिति में लाकर अंग्रेजों ने पटक दिया।

सो, आज का इण्डिया धम्मं शरणं गच्छामि! कह कर आततायी के आगे गर्दन झुका देने वाला बौद्ध भिक्षु या श्रावक नहीं, वह देवप्रिय दिग्विजयी सम्राट अशोक की तरह बलशाली, साथ ही धर्म-नीतिप्रिय आज है। इण्डिया आज स्वतन्त्र विश्व के निर्मल नीलाकाश में दिव्य तेजस्वी सतरंगे इन्द्र धनुष की तरह गगनव्यापी है।

हिमालय का यह पड़ोसी अपने शुभ्र महत्व को आज मह-

---

सूझ कर रहा है। गंगातट को यह निवासी सच मुच आज पवित्रता से पुलकित है। कहते हैं ऐसी आजादी इसे युगों बाद मिल रही है। युगों तक बाहरी वस्तुओं से उसे अनुराग नहीं था। कूटनीति भरी राजनीति को इण्डिया वाले युगों तक अधर्म मानते रहे। आज भी देश के सबसे बड़े नेता गांधी जी महात्मा हैं, साधु हैं, कूटनीति को अधर्म मानने वाले हैं, मनुष्य मात्र को आत्मवत् समझने वाले !

बड़ा कूटनीतिज्ञ था कभी कौटिल्य चाणक्य। चन्द्रगुप्त को बुद्धि के डंडे मे झण्डे की तरह झुलाता सारी जिन्दगी वह सम्राट का अभिन्न मन्त्रदाता रहा। मगर, रहा हमेशा साधु की तरह, साम्राज्य चरणों के नीचे होने पर भी मतलब रहित। कुटी में रहने वाला संचय हीन। आज के कूटनीतिज्ञ और उनके जीवन के ऊंचे स्टैंडर्ड से भारतवर्ष के तपोजीवी, श्रमजीवी, ऋषियों के उच्च विचारों की तुलना बहुत मुश्किल है।

सो, इण्डिया स्वतन्त्र हुआ। आज वह सम सांस ले रहा है ब्रिटेन के दानवी चंगुल से स्वयं मुक्त। जरा दम तो इस महादेव को ले लेने दो ! फिर तो, मैं भविष्यवाणी कर सकता हूँ, इण्डिया एक बार संसार को स्ववश करके रहेगा। वही काम जल्द ही भारतवर्ष करेगा। जो अलेक्जेण्डर, चंगेजखान, नेपोलियन, कैसर जार, हिटलर ने कर पाये और स्टालिन, ट्रूमैन, चर्चिल लाख जोर मारने पर भी जो नहीं कर पारहे हैं।

युगों से आन्तरिक मुक्ति के लिए खपने वाला यह देश आज बाहर से भी मुक्त है। ऐसे हम अमरीकन और यूरुप वाले तो नहीं हैं हमारा नैतिक पक्ष कमजोर, राजनीतिक चाल ही मजबूत फलतः हम में शुद्ध विश्वास नहीं, सन्तोष नहीं, शान्ति नहीं।

---

—झाऊलाल

हम एटम-बमवान परम धनवान हो जाने पर भी शत्रु संघर्ष और पराजय के भय से सारी रात जागने वाले और इन आत्म-बलवानों के सामने आकर जीते। ऐसा कोई शत्रु नहीं! आखिर ब्रिटेन के पास भी तो एटमबम था? फिर मि० एटली ने इस सोने की चिड़िया को छोड़ देने का इरादा क्यों किया है?

एटमबम से विश्व-विजय न होगी। विश्व-विजय तो प्रेम से ही होगी त्याग ही से, ऐसा गांधी जी का कहना है। एटमबम अमेरिका के पास आज है, भारत के पास महाभारत के ही युग में था। बनारस के एक बड़े विद्वान ने मुझे बतलाया कि महाभारत काल में एटमबम बनाने की विद्या केवल ब्रह्मचारी भीष्म को मालूम थी। अपने गुरू भगवान परशुराम से काशीराज कुमारी अम्बा के कारण युद्ध करते वक्त उन्होंने अन्त में जो दिव्य अस्त्र चलाना चाहा वही एटमबम था। परशुराम जी के पास वह बम नहीं था।

'अमेरिका के पास एटमबम था, जापान के पास नहीं, पर सभ्य अमेरिका ने सर्वदाहक अस्त्र का प्रयोग शत्रु पर उल्लास से कर डाला ऐसा अन्याय हम आर्यों ने कभी पसन्द नहीं किया। काशी के विद्वान् ने गर्व से मस्तक ऊंचा कर कहा--युद्ध में भी धर्म का विवेक हमने बराबर किया। सारे जगत ने ब्रह्मचारी भीष्म को भगवान परशुराम पर एटमबम चलाने से रोका। जापान पर जब अमेरिका ने एटमबम गिराया तब आज के नीच राष्ट्र टुकुर-टुकुर ताकते रहे। हमारे पुण्य देश में भीष्म की माता गंगा तक ने सतेज वर्जन किया था कि वह हथियार शत्रु पर हर्गिज न चलाया जाय जो उनके पास नहीं है। ऐसा करना अन्याय और आततायीपन है।'

---

**जब सारा आलम सोता है—**

इस 'मूड' में है इस वक्त इण्डिया। वह एटम बम से नहीं, आत्मबल से विश्व-विजय पर बद्ध परिकर है। वह मारेगा किसी को बहुत मुश्किल से, हाँ, स्वयं मर कर संसार को अमरता की कुंजी देने का साधक वह अर्वाचीन तो है ही प्राचीन भी बहुत है।

## जौहराबाद

१४-१५ अगस्त १९४७ को मैंने जौहराबाद नामक इण्डिया के बड़े शहर में जो कुछ देखा वह सचमुच 'ग्रेण्ड' था। अद्भुत थी वह नगर कांग्रेस की वह खुली बैठक, जिसमें सभी दलों के कार्यकर्त्ता पधारे थे। १५ अगस्त को कौन भाग्यवान सुभाष चौक में झण्डा ऊंचा करे, यही मसला सबके सामने पेश था; सभा में बड़ा उत्साह, गहरा जोश था। सभी दलों के हिन्दुस्तानी गोया यह महसूस कर रहे थे कि उन्होंने गत गौरव पुनः प्राप्त कर लिया है और अब उनकी आँखों के आगे एक आदर्श है, और सीने में मजबूत साधक शक्ति है। कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट, फारवर्ड ब्लाक वाले और मजदूर-किसान प्रजा पार्टी वाले कोई हो—गांधी टोपी सब के सर और दूध, चाँदनी, बर्फ की तरह शुभ खद्दर हरेक के तन पर। इससे ऐसा भासित होता है कि पार्टियाँ भले ही भिन्न-भिन्न हों, मगर प्रेरक सब के एक महात्मा गांधी ही हैं। गांधी सच्चे माने में आज हिन्दुस्तान का कमांडर इन चीफ है और कैसा अजीबो-गरीब दुनिया को हैरत में डालने वाला कमाण्डर! इस सादगी पे कौन न मर जाय ऐ खुदा लड़ते हैं मगर हाथ में तलवार भी नहीं!

कहने का मतलब यह कि सभा में महात्मा का रंग गहरा था। जौहराबाद के लोगों ने हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई में

---

—फाऊलाल

काफी कुरबानियां कीं मुझे बतलाया गया। विदेशी दमन का नंगा से नंगा रूप सन् ४५ से ४७ तक जौहराबाद की जनता के सामने बार-बार आया। बार बार अंग्रेजों ने हरे-भरे शहर को उजाड़, क्रान्तिकारियों की बस्तियां बरबाद कर डाली थीं। मगर जौहराबाद अपने ढंग का बेजोड़ शहर। हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी सभी एक आवाज से अंग्रेजी राज के विरुद्ध और स्वराज्य के हिमायती। यह बात मैंने अनुभव की तब जब झण्डे के प्रश्न पर १७ नाम ऐसे आये जिनमें सभी फिरके के त्यागी बड़े आदमी थे। सब के समर्थक यही चाहते थे कि उन्हीं का पसन्दीदा त्याग वीर १५ अगस्त को सुभाष चौक में स्वतन्त्रता के प्रथम प्रभात में राष्ट्रीय पताका फहराय। उक्त १७ हों में ठाकुर बलवीर जी थे। बड़े जमींदार, मगर देशभक्त कट्टर बार-बार जेलवासी! पं० पूर्णेन्दुप्रकाश पाठक थे, मजूरों के सबसे बड़े नेता। श्रीराखा चन्द्र लाहा नामक बंगाली क्रान्तिकारी बमबाज थे जो दो दो बार फाँसी के तख्ते पर झूलने से बचे थे और जिनके जीवन पर जौहराबाद के नौजवान सौजान से फिदा। 'बलवा' के सुयोग्य सम्पादक श्री मोतीलाल जी वैशम्पायन के पक्ष में तो प्रायः सारी सभा थी। पिछले आन्दोलनों में ५ बार तो पुलिस ने 'बलवा' प्रेस को धूल में मिला दिया था। सम्पादक जी के समर्थकों की गिनती नामुमकिन थी। फिर देवी भद्रशीला जी थीं कि नहीं जिनके पति का देहान्त जेल के सींखचों के अन्दर हो गया था।

## झाऊलाल

अन्ततोगत्वा सबसे अधिक मत मजूरों के नेता पूर्णेन्दु पाठक और देवी भद्रशीला के पक्ष में स्पष्ट मालूम पड़ने लगे। इसी वक्त एक दुबला पतला कम्युनिस्ट युवक, उठ खड़ा हुआ। उसने कहा

---

जब सारा आलम सोता है—

मैं इस महान अवसर पर सुभाष चौक में झण्डा फहराने के लिए रोशनपुर के लाला झाऊलाल का नाम 'प्रपोज' करता हूं। क्या आप में से किसी साहब को कोई आपत्ति है? इस पर सारी सभा ने तरुण कम्युनिस्ट की प्रशंसा कर उसकी राय सादर मंजूर की। सम्पादक 'बलवा' और भद्रशीला जी दोनों ही ने एक स्वर में स्वीकार किया कि पिछली आजादी की लड़ाई में रोशनपुरा के लाला झाऊलाल जी की कुरबानियां बेजोड़ हैं। शहीद एक बार शहीद होता है, लालाजी को सौ-सौ बार शहीद होना पड़ा सौ-सौ रंग से, मगर उफ उस मर्द ने कभी न की!

मैं सारे जौहराबाद की जनता की तरफ से आदरणीय लाला झाऊलाल जी से प्रार्थना करता हूँ कि आज वही इस झण्डे को लहरायें, जिसकी शान रखने में आपने बेहद कुरबानियाँ कीं, जिल्लतें उठाईं, दो बेटे खोये, एक आँख गंवाई—नौकरी खोई, घर और जमीन दोनों की बर्बादी अपने आंखों देखी, पर उसूल से टस से मस न हुए।

सबके साथ मेरी नजर भी उस व्यक्ति पर पड़ी जिसे सम्बोधित कर कम्युनिस्ट कामरेड ने उक्त बात कही थी, याने झाऊलाल पर। अब तक मेरी धारणा थी कि बड़े काम कुरबानी, त्याग वही कर सकते हैं जो लम्बे-चौड़े खूब दर्शन हों। झाऊलाल में वैसी एक भी बात नजर न आयी। अमेरिका की अधिकाँश जनता तो ऐसे शख्स को क्या से क्या कह कर 'लिंच' लटकाकर मार डालती। हैरत! झाऊलाल भी कोई आदमी!

भुदगे सा ठिगना, काला रंग, दुबला इतना कि तन के कपड़े ऐसे लगते गोया लोहे की लम्बी सीखों पर टंगे हैं। मुंह के कई दाँत नदारद होने से झाऊलाल का चेहरा पोपला पड़कर पिचक

गया था। कानी आँख पर ऐसी छवि और रङ्ग! वही—करेला नीम चढ़ा वाली हिन्दी कहावत खैर!

झाऊलाल अपने स्थान से उठ कर विशाल राष्ट्र ध्वज के गगन चुम्बी स्तम्भ के पास ऐसे चले जैसे कोई प्रेतस्वप्न में विपत्ति की तरह मन्द गति से चले। वह झण्डे के पास स्तम्भित खड़े हो गए। सामने सारे जौहराबाद का जन-समुद्र हरहरा रहा था। जनता के समुद्र ने गम्भीर गर्जन कर कहा—त्याग वीर की जय! इसके बाद कम्युनिस्ट तरुण ने झाऊलाल का परिचय यों दिया

"साथियो! यह हैं साथी झाऊलालजी, जिन्हें आप भली भाँति जानते पहचानते हैं। देश की आजादी की लड़ाई में शुद्ध-त्याग बलिदान हम सबने किए, पर लाला झाऊलाल के त्याग महान हैं। लालाजी—आपको मालूम होगा—आज कल वही खानदानी त्यागी हैं। आपके दादा लाला हरनन्दनसहाय जी बिहार के विख्यात बाबू कुंवरसिंह जी के मीर मुंशी थे। बड़े जागीरदार, आलिम और विद्वान्। जब देश भक्त कुंवरसिंह संकट में पड़े, तो लाला हरनन्दनसहाय ने अपनी सारी जागीर बेच कर अंग्रेजों के खिलाफ उनकी मदद की।

"इसके बाद बेदर्द ब्रिटिश गोराशाही ने लाला हरनन्दन सहाय और उनके खानदान को कभी माफ नहीं किया। स्वयं लाला जी दुश्मनों के बन्धन और जेल में स्वर्गवासी हुए झाऊ-लाल जी के पिता जी को तो चढ़ती जवानी में नीच गवर्नमेंट के इशारे पर प्राण घातक आक्रमण से मार कर कोई गुण्डा ला पता हो गया इस तरह १२ वर्ष की वय में ही झाऊलाल जी के कोमल कन्धों पर परिवार के संभालने का भारी भार आ पड़ा और उसी अवस्था में इस बहादुर ने परिवार ही नहीं,

---

क्रान्तिकारी आन्दोलन को भी मजबूत बनाने में सफलता प्राप्त की !

"गोरी गवर्नमेंट धोखे में रह, क्रान्तिकारियों का काम निर्विघ्न चलता रहे—निस्सन्देह इसीलिए झाऊलाल ने सरकारी नौकरी करली डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के हैड क्लर्क बन गये। फिर भी नौकरी कम और विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह भड़काने का धन्धा ही अधिक आप करते रहे। तब तक आये मैदान में अहिंसा का अस्त्र लिए, प्रेम से मुस्कराते, सत्य दिव्य उन्नत-मस्तक महात्मा गांधी की पुकार पर जौहराबाद में सबसे पहले सरकारी नौकरी छोड़ सत्याग्रह किया लाला झाऊलाल ने। सन् ४२ तक आप कई बार जेल हो आये मगर आप जनता के सामने नेता की तरह कभी नहीं आये। हमेशा विनीत कार्यकर्त्ता या स्वयंसेवक ही बने रहे। खतरे के वक्त आगे आ लोहा लेना और जब संकट टल गया, तो चुपचाप अपने घर में बैठ निर्मम विदेशी राज्य को उलटने वाले बहादुरों से सम्बन्ध स्थापित कर किसी और महाविपत्ति को न्यौतने में लग जाना।

"कितने कार्यकर्त्ताओं की लाला झाऊलाल ने गुपचुप मदद की, कोई गिनती नहीं और लाला जी की नजर केवल शुद्ध योद्धाओं पर रही। कांग्रेसी हो, बमबाज, कम्युनिस्ट या सोशलिस्ट यह सभी को मदद करने पर तन, मन धन से तैयार। फिर भी आप चार आने तक के मेम्बर नहीं, न कांग्रेस के, न कम्युनिस्ट या किसी पार्टी के। सब की मदद करने में पुरखों के वक्त के कोई दो लाख रुपए का खानदानी जेवर और दुख के वक्त के लिए संचित नकदी निधि धीरे-धीरे सर्फ हो गयी, मगर लाला जी के घर की देवियों ने कभी 'ना' न कहा। सारे खानदान ने भूखों

---

मर कर भी, फटे हाल खुद रह कर भी, सच्चे देशभक्तों की मदद दिल खोल कर बराबर की।

"चुपचाप जौहराबाद के एक कोने में बैठ कर लाला झाऊ-लाल ने कभी बम बाजों को मसाले जुटाये, सत्याग्रहियों को सूत और चर्खे और कभी 'करो या मरो'! की पूर्ति के लिए घर का बचा खुचा सामान बेचकर रेलवे लाइन उखाड़ने, तार काटने और बिजली के सम्बन्ध नष्ट करने के औजार जुटाये। सन् ४२ में इस वीर लाला ने आजादी के यज्ञ में अपना सर्वस्व ही होम दिया। दो बेटे, क्रमशः १७-१५ वर्ष के उगते नवयुवक दोनों ही सन ४२ में जौहराबाद कांग्रेस दफ्तर पर लहराते तिरंगे झण्डे की शान पर कुरबान हो गये, पर ब्रिटिश टामियों को हाथ लगाने न दिया। इसके बाद जब दुश्मनों को यह मालूम हुआ कि दोनों बहादुर लड़के लाला झाऊलाल के थे तो वे लाला जी का घर गोरी पलटन से घेर ऐसे जुल्म तोड़े कि शोक और भय से लाला जी की पत्नी का हार्टफेल हो गया और होता भी क्यों न। साम्रा-ज्यशाही के कुत्ते सफेद सैनिकों ने स्त्री के सामने लाला जी को नंगा कर सैकड़ों हन्टर लगाए! जब वह जमीन पर गिर पड़े तब शैतानों ने बूटों की ठोकरें मार-मार कर लालाजी का सारा चेहरा लाल कर डाला। कान के पर्दे फट गए। एक आँख आजादी की भेंट हो गयी। स्त्री के साथ पुरुष को भी मरा जान जब गोरे चले गये, तब लाला जी हिले, होश में आये, मगर औरत के लिए रोने नहीं बैठे, न तो गहरे लगे, जख्म ही धोने। न रोये। उन्होंने तो उस समय भी सारे जौहराबाद और पास के गांवों में घूम-घूम कर प्रचार किया कि गोरी गवर्नमेण्ट और पल्टन की कोई भी मदद न करे। पास की रेलवे लाइनें और तार काट डाले

जायं। सड़कों में बड़े बड़े गड्ढे खोद कर-दुश्मन की मोटरों को गुजरने के ना काबिल बना दी जायं। जो हमारे प्यारे मुल्क को गुलामी में जकड़ने के फेर में हैं, उस दुश्मन सेना की राह के कुओं में जहर तालाबों में मगरमच्छ डाल दिए जायं। जला दिया जाय घर का अनाज भले ही, मगर गोरों के हाथ वह न लगे!

'और जौहराबाद और उसके आस पास के गाँवों ने नये नेताओं के जेल में होने पर भी गोरी पल्टनों को ऐसा लोहा दिया कि याद करें। ६ दिनों तक सारे जिले में एक भी गोरा नजर नहीं आया। कचहरी, थानों पर जनता ने कब्जा कर लिया। जब एक भी नेता नहीं था तब ६ दिनों तक जौहराबाद में स्वतत्र सरकार चलायी लाला भाऊलाल ने। पंचायतें कायम कीं, स्वतंत्र रक्षा दल बनाए। गाँवों में आन्दोलन इतना उग्र हो उठा कि प्रतिशोध में अंग्रेजी सेना ने वह गांव जलाए उनमें रहने वालों को गोलियों से भून डाला। मगर फिर भी भाऊलाल अंग्रेजों के हाथ न आये। आतंक फैलाने के लिए अंग्रेजों ने लाला जी के घर को बारूद से उड़ा, गधों के हल से चौरस बना बीच में लाला जी के पुतले को फाँसी पर लटका दिया!

'साथियो! आज बड़ा शुभ दिन है जो जुल्मी गोरे बोरिया-बंसना बाँध रहे हैं, भारत आजाद हो रहा है और उसकी आजादी में मरने खपने वाले सफल काम हो रहे हैं! यह लाला जी हमारी आँखों के सामने उस जन-साधारण के प्रतीक की तरह खड़े हैं, जिसने स्वतन्त्रता की लड़ाई में हर तरह की कुरबानी दी है, पर जिसे कोई नहीं जानता। न तो गीतकार न इतिहास लेखक ही। असल में वही प्रभू बल सम्पन्न सर्व शक्ति मान है। बोलो जन-साधारण की जाय!

---

— भाऊलाल

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा,
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

दुर्बल, काले, पोपले, काने, बहरे; निर्धन प्रचण्ड देशभक्त लाला झाऊलाल ने डोर पर जोर दिया। तिरङ्गा हवा में लहरा चला। उपस्थित जनता ने स्वतन्त्र घोष कर झण्डे की वन्दना की। फिर बड़े बड़े अंग्रेज अफसरों ने फौजी अदा से सलामी दी। फिर गोरी सेना ने सलामी दी। फिर गोलंदाजों ने। फिर हवा बाजों और नौ सैनिकों ने और अन्त में पुलिस ने!

झाऊलाल यह सारा जलसा एक ही आंख से वैसे ही देखते रहे जैसे बड़े परिश्रम से जोते बोये, वायु-बवंडर से बचाये पके खेत को खेतिहर देखता है।

जौहराबाद ही की तरह सारे इण्डिया में आजादी का जोश जगमगा रहा है। बहुत से कट्टर हिन्दू बंगाल, पंजाब और सिंध के बट जाने या पाकिस्तान कायम हो जाने से सन्तुष्ट नहीं। वे आसिंधु हिमाचल भारत को स्वतन्त्र देखना चाहते थे। उनका कहना कि 'आर्यजाति का आदि देश, वह ब्रह्मावर्त्त और ब्रह्मर्षि देश जहाँ वेद मन्त्रों का सर्व प्रथम उद्घोष हुआ था, सिन्धु और सरस्वती का वह अन्तर्वेद जहाँ हमारे धर्म और संस्कृति की नींव पड़ी थी, आज हम से अलग हो रहा है। ऐसी आजादी से लाभ ही क्या? कांग्रेस वाले यह सही जवाब देते हैं कि 'पाकिस्तान या देश के बंटवारे का दुख हमें भी है पर २६ करोड़ हिन्दू स्वतन्त्र हो रहे हैं, यह लाभ थोड़ा नहीं। ऐसा सुअवसर १ हजार वर्ष बाद प्राप्त हो रहा है और थानेश्वर के मैदानमें पृथ्वीराज की पराजय के बाद हमारी पर वशता का सिलसिला जो बना, सो आज टूट रहा है!

आखिर इण्डया आजाद हो गया
इण्डया चिरजीवी हो!!

---

जब सारा आलम सोता है—

# रंग

अगस्त १९४७, पूने की बात। रेसके मैदानके दूसरे दर्जे या सेकेण्ड इन्क्लोज़र में दो पारसी तरुण—फरामजी और मीनू।

मीनू - चौथी रेस हो चुकी पर सिवा हारके हासिल कुछ भी नहीं! आजका दिन तो मनहूस ही गुज़रता मालूम पड़ता है।

फराम—पिछली तीन रेसोंमें डटकर 'बेट' करने के सबब मेरा तो अभी ही दिवाला निकल चुका है। छल्ली रक़म मेरी जेब में है महज़ पाँच रुपये दस आने।

मीनू—इतने पैसे तो पूने से बम्बई की वापसी रेल-यात्रा ही के लिए चाहिए। मैं कहता हूँ फराम--अब हम न रमें तो बेहतर हो।

फराम--जब तक एक भी टिकट के रुपये जेब में हों, तब तक बन्दा तो बाज़ी लगाता जाता ही है। हार गया तो बिना टिकट बम्बई चलना मंजूर, पर इस रेस का चान्स छोड़ना गधेड़ों का धन्धा होगा। महाराज ग्वालियर की घोड़ी-बेगमपारा-श्योर डड सरटेनटी-है, पाँचवें रेसकी। सिनेमा एक्ट्रेसों में बेगमपारा जैसी तेज़ तर्रार, घोड़ियों में वैसी ही यह। गैलप, फ़ार्म, वेट, चान्स सभी बेगमपारा के फेवर में हैं। मगर यह तो बतला मीनू! ये राजा लोग सिनेमा एक्ट्रेसों के नाम अपनी घोड़ियों को क्यों देते हैं?

मीनू--यह सवाल घोड़ी-और-एक्ट्रेस-पसन्द राजाओं से पूछ या राजा और रेस-पसन्द सिनेमावालियों से--मुझसे क्यों

पूछता है ? सामने बोर्ड देख ! वह ! नम्बर ६— जोन्स । अहो ! बेगमपारा पर जाकी तो बुरा जा रहा है, हैवीवेट ।

फराम—बस घास खा गयी है तेरी अक्ल मीनू ! इतने दिनों रेस मैदान की धूल फाँक तूने झख मारा । मैं शर्त लगाता हूँ—बेगमपारा—ईजी । क्या मजाल जो कोई दूसरा जानवर उसकी दुम के बाल भी छू सके । जोन्स-जाकी-हेवी-वजनी है, हाँ, पर चाल और काल (वक्त) का मास्टर । ऐसी फिनिश करता है कि जाकी नहीं जादूगर मालूम पड़ता है । चल ! पहले टिकट खरीद लें—स्ट्रेट विनका मैं तो लूँगा क्योंकि रुपये पाँच ही हैं । तेरे पास जितना भी हो मैं कहता हूँ बेगमपारा पर रम जा कमा लेगा ।

मीनू— माफ करना फराम —बेगमपारा का मुझे भरोसा नहीं सौ में सौ बार दगा करेगी । ग्वालियर के घोड़े तभी जीतते हैं जब राजा मैदान में होता है । राजा तो दिल्ली में है—सुना है । मेरे पसन्द का जानवर इस रेस में है नं० ९—हर मेजेस्टी । क्या कमाल की घोड़ी है कि सारे देश में मशहूर—पन्द्रहबार दौड़ चुकी कभी हारी ही नहीं । जब देखो 'विन' बनी धरी है ।

फराम—पागल न बन—मैं कहता हूं आज हर मैजेस्टी पर कोई रेस का जानकार जुआड़ी एक कौड़ी भी नहीं लगायेगा । इतनी लम्बी सवा मील की रेस वह जीत ही नहीं सकती—मर भी जाय तो ।

गर्जे कि दोनों पारसी युवकों में अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार टिकट खरीदे । फराम ने सीधा अव्वल या 'विन का टिकट खरीदा । मीनू के पास अभी सौ-सवा सौ रुपये थे । उसने पचीस-पचीस के 'विन' और 'प्लेस' के टिकट 'हर मैजेस्टी' के

खरीदे। घोड़े मैदान में लाए गए। रेस छूटने की जगह तार के उस पार झपटने को एक आँधकर तैयार चलते-मचलते स्वस्थ्य सुदर्शन घोड़े !

फराम—रेस खेल तो खेलों का राजा है मीनू। मैं इसे फर्स्ट क्लास का 'स्पोर्ट' मानता हूं ! जुआ भी तो ऐसा जिसे वायसराय खेलें-बादशाह भी ! दौलतों, चमाचम चमन ! बाग अदन !! मुंह माँगा मिले, तो मैं खुदा से यही माँगू कि बन्दापरवर पहले तो रुपया हो—बहुत बहुत। फिर हफ्ते के सातों दिनों के नाम शनीचर कर दिए जायं ताकि जी भरकर रेस खेला जा सके। रेस के मैदान मे चले आइये-बस-आ गये माडर्न परिस्तान में जहाँ मय, मीना, सागर, स क़ी याने सुरा, सुराही, प्याला और प्यारी—एक ही जगह ! सारे जहाँ से अच्छा रेसीस्ताँ हमारा ! पिर्र्र-घण्टी बजी। रेस छूटी-बेगमपारा ! बेगमपारा !!

पर फराम के दुर्भाग्य ! रेस 'विन किया 'हर मैजेस्टी' ने-ओर से छोर-'स्टार्ट टु फिनिश'—तक। वह इतनी अच्छी दौड़ी कि दूसरे जानवर उसके मुकाबिले में खच्चर और गधों की गति से आये और ग्वालियर की बेगमपारा। खुदा की मार—लाख बार-। उसने दौड़ने में कभी रुचि ही न दिखाई और सबके पीछे चहल-कदमी-कदम से आयी। फरामजी का मुंह फक। उधर मीनू को देखो तो चेहरा नहीं, सौ कैण्डिल पावर का 'बल्ब'-स्विच आन ! फिर भी अन्तिम टके हारने का जहरीला घूंट पीते हुए उसने साथी को बधाई दी—

फराम—कांग्रेचूलेशन्स ! खूब ! साली खूब दौड़ी ! सोलहवीं जीत- ! घोड़ी नहीं परी है परी ! और यह बेगमपारा-रूखरी-सूरत हराम-मुफ्त तो मार ही डाला इसने।

---

—रंग

पर मीनू को कहाँ फुरसत. वह जीत में। विन और प्लेस के पाँच-पाँच टिकट। कुछ भी 'डिविडण्ड' या फाला बंटे गठरी होगी गहरी। मीनू सीधे जीत के पैसे मिलने वाली जगह की तरफ लपका-आह! कैसा भाग्यवान! फराम मीनू की खुशी से चमक उठा और अपनी यह हार बड़ी ही खली। वह काफी रुपये हार चुका था-डेढ़ सौ! सौ रुपये माहवार पानेवाला सेण्ट्रल बैंक का क्लर्क और हार गया डेढ़ सौ! डेढ़ सौ कर्ज लेकर वह आया था। उस दिन उसके सभी घोड़े 'श्योर' थे डेढ़ सौ से हजार-दो हजार बनाने की उम्मीद बाँधकर वह आया था। अब कर्ज देगा कहाँ से? महीने भर खायगा क्या? उसे ऐसा जोखम नहीं उठाना चाहिए था। उसने ऐसा 'रिस्क' लिया क्यों? पर वह अपने को दोषी मानने को तैयार न हुआ-आशा लगायी उसने तो बुरा क्या-अस्वाभाविक क्या इसमें? आदमी आशा ही पर तो जीता है, मरता है! मगर आशा झूठी क्यों निकली? पर जुए का दाँव का भरोसा ही क्या? पर जुआ गवर्नमेण्ट खेलाती क्यों है ऐसा जिसमें आशा का इतना चमचम चिराग देखकर किसी की अक्ल चौंधिया जाय-पतिंगों की तरह टूटकर अटूट लाभ के लोभ में कोई जलमरे! आह! मीनू के लौटने पर फराम रेस की निन्दा कर चला....

फराम—यह सरासर बेईमानी का हराम धन्धा है।

मीनू—देख धीकरा, हार गया तो अब इस धन्धे को हराम तो न कह। बम्बई, पूना. कलकत्ता, मद्रास में अनेक परिवार रेस के जूएपर पलते हैं। खुद मैं ही सिवा रेस खेलने के और कोई भी काम नहीं करता।

फराम—पर है यह निहायत हराम। गान्धीजी ने शराबबन्दी

में जितना जोर लगाया उतना इस शैतानी धन्धे के विरुद्ध नहीं जब कि रेश में शराब पीकर वेश्याओं के गले में बाँह डाल कर खुले आम आदमी जुआ खेल सकता है। शराबखाने में महज दारू बिकती है। यहाँ तो वाम मार्गियों के पंचमकार का मीना बाजार लगता है। और मिनिस्ट्री है काँग्रेस, प्रधान मंत्री हैं महात्माजी के विश्वस्त भक्त।

मीनू - रेस से सरकार को बड़ी आमदनी होती है, इतनी कि रेसें बन्द हो जाँय, तो बजट फेल हो जाने का अन्देशा है। कांग्रेस मिनिस्ट्री हो या कोई-सरकार चलाने के लिये पैसे तो चाहिये। सो, खास मौकों पर कांग्रेस मंत्री लोग भी रेस के मैदान की रौनक बढ़ाया करते हैं। उस वार्ड का वह मशहूर कांग्रेसी भी तो इसी इन्क्लोजर में चोरी से 'बीट' खाता है। दस-दस आने तक की जब कि एक टिकेट पाँच रुपये बिना मिलता नहीं।

फ़राम चुप रहा पर मन ही मन गंभीर चिन्ता मग्न। वह बरदाश्त से बाहर हार गया था। उसे कोई कूल किनारा नजर नहीं आ रहा था। वार्ड कांग्रेस वाला 'बीट' खाता है, तो उसी ने खेल कर कौन पाप किया। पाप है हारना। खास कर फ़राम जैसा। अब उसके पास एक टिकेट तक के रुपये तो नहीं-पर क्या? हाँ वह तो दस आने तक की बीट लेता है और दस आने तो अभी फ़राम की जेब में थे। फ्लूक घोड़ा कोई लग जाता तो दस आने ही में एक रकम मिल जाती। है न इसी रेस में वह 'ट्रटर' बिलकुल तैयार। जीते तो चार सौसे कम न देगा पाँच रुपये पर। पाँच पर चार सौ, तो ढाई पर दो सौ, तो सवा रुपये पर सौ और दस आने पर पचास रुपये! अभी यह छठीं रेस है। पचास मिल जाँय तो नवीं रेस तक लॉस मेकअप' पूरा

—रंग

किया-कुछ मुनाफ़ा तक किया जा सकता है। हाँ बड़ी आशा पूरी आशा-पूरी आशा !

मीनू की आँख बचा फराम कांग्रेसी बीट खोर की तलाश में लपका और 'जिन खोजा तिन पाइयाँ'। भलाई के रत्न गहरे में हों पर बुराई के शैवाल जाल कितने सनहरे हैं और निकट। काँग्रेसी मिल गया सरसे पाँव तक खद्दरधारी इस्तरी की हुई बाँकी गांधी कैप। पर कांग्रेसी ने फराम को निराश किया-"रेस छूटने के करीब है, अब बीट नहीं ली जा सकती।" इस पर लाभ के लोभ से लोलुप हार से लाचार फ़राम ने दांत दिखाकर प्रार्थना की "देखिये आप देश भक्त हैं, सबका भला करना आपका फर्ज है। ट्रेटर पर मेरे दस आने 'विन' लगा दीजिये प्लीज-प्लीज !" इसपर नखरे के साथ फ़राम ने पैसे लेते हुए बीटखोर खद्दर धारी ने कहा-"ट्रेटर पर दस आने पैसे मैं यह समझकर खा रहा हूं कि तुम धोका खाओगे। यह घोड़ा न तो कभी जीत पाता है और न पायेगा-कसम भारतमाता की !"

लेकिन इस बार फ़राम का निशाना खाली नहीं गया। जीता ट्रेटर ही ! और कैसा 'फ्लूक' था अचानक आनेवाला। चार सौ नहीं, ट्रेटर ने दस रुपये के टिकटपर सोलह सौ रुपये दिये। याने पाँच पर आठ सौ। इस तरह फ़राम को दस आने के पूरे सौ रुपये हुए, पर कॉंग्रेसी बीटखोर बदल गया देने के समय यह कहता हुआ कि ऐसे अचानक आने वाले घोड़ों पर प्राइवेट बीट खाने वाले लिमिटेड पेमेण्ट करते हैं। पाँच पर सौ रुपये से ज्यादा नहीं। इस तरह दस आने के साढ़े बारह रुपये हुए। फराम के लाख सर खपाने पर भी खद्दर धारी जुआड़ी टससे मस नहीं हुआ। इस पर बारह रुपये लेने से इनकार कर बकता

झकता वह वहाँ से हट तो गया पर द्वेष उसके मनका गया नहीं किस तरह इस बेईमान खद्दर धारी को सबक सिखाया जाय वह यही सोचता रहा हाँ, उसे याद आयी। वह पारसी सार्जण्ट बाटली वाला है न? जरूर इसी रेस कोर्स में होगा कहीं। उसमें एक भी मीटिंग छूटती नहीं है। वह कहीं मिल जाता तो फराम इस नमक हराम खद्दर धारी को ठीक कर देता। व रहा वह! लपक कर फराम बाटली वाले के पास 'फिर उसके कान के पास' फिर दोनों बीटखाने वाले की खोज में। दूर ही से फराम ने बाटलीवाले को दिखाया-"वह देखो अलानियाँ वह बीट ले रहा है। पीछे से जाकर कालर से साले की गर्दन कसो!"

देखते ही देखते बाटली वाले ने खद्दरधारी जुआड़ी को गिरफ्तार कर लिया, फिर भीड़ से अलग एक तरफ ले जाकर उसकी तलाशी ली जिसमें दो हजार तीन सौ चार रुपये निकले और छोटे-बड़े पुर्जे जिसमें पेन्सिल से बीट लगाने वालों के नाम और घोड़ों के नम्बर लिखे थे।

"क्यों जनाब," बाटली ने जुआड़ी से पूछा—"हुजूर का इस्मशरीफ या नाममुबारिक?"

"छगन भाई ....!"

"खद्दर पहनकर जूआ खेलते-जुआ ही नहीं टर्फ क्लब के कानूनी हक को चोरी से लूटते, ४२० करते तुम्हें शर्म नहीं आयी मि० छगन भाई?"

छगन भाई चुप। गिरफ्तारी से ज्यादा ग़म उसे उतने रुपये छिन जाने का था।

"रुपये तो मुझे लौटा दीजिए।" गिड़गिड़ाया वह।

पहले तुम इस सवाल का जवाब दो कि ऐसे बुरे काम तुम

---

--रंग

खद्दर पहनकर क्यों करते हो ?"

"खद्दर मे हुजूर, लाख ऐब छिप जाते हैं"—उसने कहा-"खद्दर राजनीति धर्मवालों का रामनामी दुपट्टा है ऐसा जिसे जो भी ओढ़ ले वही साधु, देशभक्त, त्यागी माना जायगा। खद्दर पहन कर चोरी का बीट कितने दिनों से खाता हूं—पर पकड़ा आज ही गया।"

इसके बाद बहुत गम्भीर भाव से जुआड़ी ने पुलिसवाले से कहा, धीरे से—' इसमें से सौ का एक नोट लेकर मुझे छोड़िए मैंने कुछ खून तो किया नहीं है।"

"क्या किया है तुमने और क्या नहीं किया इसका पता तो पुलीस स्टेशन पर लगेगा।"

"दो सौ लेकर जान छोड़िए।"

"मैं फर्ज अदा करता हूं—रिश्वत नहीं खाता। फिर ऐसे लफ्ज ओठ पर लाना नहीं।"

"पाँच सौ हुजूर पाँच सौ।" गिड़गिड़ाया छगन भाई।

इसके बाद क्या हुआ, छगन भाई ने रुपये दिए या नहीं, बाटलीवाले ने लिए या नहीं हमें मालूम नहीं। पर शाम को जब पूना स्टेशन पर फराम और छगन भाई मिले तो पहले को देखते ही दूसरा गालियाँ दे चला—

"ट्रेटर-ट्रेटर को तो जूतों से मारना चाहिए। जिसने दगा से मेरा सत्यानाश कराया उसका सब सत्यानाश होकर रहेगा। मेरे पास टिकट तक के पैसे पुलीसवाले ने नहीं छोड़े। जान छोड़ी तो पर जान निकाल कर जेबमें जब्त करने के बाद। यह पुलीसवाले जनता के रक्षक नहीं पूरे भक्षक हैं नाग-तक्षक। सालों ने उल्टे उस्तरे से मुझे मूडा।"

साढ़े दस बजे रात खोली में लौटकर आते ही छगन भाई ने पहले अपनी पत्नी को पीटना शुरू किया, इसलिए कि वह सो क्यों रही थी। लड़की को इसलिए दो-चार धौल जमाये कि वह जाग क्यों रही थी। असल में सारे रुपये छिन जाने से उसका मानसिक सन्तुलन नष्ट हो चुका था। एक भी तो पैसा हराम-जादों ने उसके घर नहीं छोड़ा था। आखिर कल का काम कहाँ से चलेगा। खोली का भाड़ा चार महीने से देना बाकी है, तीस रुपये के हिसाब से एक सौ बीस रुपये। घर में ताम्र चार की भी कोई व्यवस्था नहीं, फिर परसों ही १५ अगस्त। आजादी का पहला दिन—मैं काँग्रेस महिल का मशहूर देश भक्त। आजादी के तीन दिन पहले ही कांग्रेसी का दिवाला निकल जाना शुभ भविष्य का सूचक तो नहीं।

वह करवटें बदलता रहा ग्यारह से बारह बजे तक, पर नींद कहाँ—चिन्ताओं के जागते श्मशान में? सोने की दवा आखिर बिना सोये तो वह पागल हो जायगा। पर नींद आयी नहीं, आती नहीं। हैरान हो वह बिस्तर से उठ बैठा. कुछ सोचने लगा उठ कर कपड़े पहने और खोली से बाहर मकान के नीचे, सड़क पर आ रहा। "उसका धन्धा तो सारी रात चलता रहता है। उसी के यहाँ नींद की दवा मिलेगी।" मन ही मन भुनभुनाता कालबादेवी से धोबी तालाब की तरफ वह बढ़ा। फिर एक गली में। वह रुका एक अधखुले होटल के दरवाजे पर।

"खण्डू भाई है?"

"हैं-हैं-छगन भाई आओ" अन्दर बुलाते हुए खण्डू भाई ने पूछा—"आधीरात के बाद आज कैसे चले महाशयजी, यहाँ तो देसी-ठर्रा-मिलती है। आपको तो दारू और बिस्कुट और

औरत तो विलायती ही सुहाती है। कपड़े बस खद्दर के हा हा हा हा !"

"मज़ाक छोड़ो !" छगन ने कहा—"एक अद्धा मुझे मँगा दो बहुत थका हूँ।"

"अभी लो, और, सेठ साहब के लिए अद्धा तो ला।"

"इतनी जोर न चिल्लाओ खण्डू भाई" छगन ने कहा—"कोई पुलिसवाला सुन लेगा तो मुसीबत आजायगी।"

"मुसीबत की तो ऐसी तैसी" छगन ने सामने पीने का सामान रखते हुए खण्डू से कहा "बारह सौ रुपये महीने भरता हूँ। मूँछ के बाल उखाड़ लूं कोई इधर आँख उठावे तो।"

"अजी, गो कि तीन ही दिनों बाद स्वराज्य होने वाला है पर नीयत पूछो तो किसी की सही नहीं। पुलिस वाला पैसे खाकर दूसरे को ललकार देता है। मुझे तो आज रेस में बाटली वाले ने लूट ही लिया।" इसके बाद थोड़ा पीते पीते रो रो कर पूना की लूटवाली कहानी जुआड़ी ने शराब बेचने वाले को सुनायी।

"तिसपर तुम कहते हो १५ अगस्त से स्वराज्य होगा" शराब वाले ने जवाब दिया-"भैयाजी की बातें। अंग्रेज और स्वराज्य देगा ? कितनों से मैंने बातें की एक को भी एतबार नहीं कि स्वराज्य होगा। कहते हैं आने वाली रितु की सूचना एक महीने पहले ही से लग जाती है। देखते हो बाहर सारी बम्बई में स्वराज्य का कोई लक्षण ? न उत्साह न तैयारी न जोश-बस चर्चा-चर्चा। दूसरा देश होता तो महीनों से तैयारी होती। यहाँ खोजो तो शहर में नये ढंग का एक झण्डा भी न मिलेगा।"

"स्वराज्य तो जरूर होगा, भले कमज़ोर हो"-छगन भाई ने खण्डू को समझाया। "ब्रिटिश पार्लमेण्ट वादों से मुकर नहीं

---

सकता। पर झण्डे वाली बात तुमने खूब ताड़ी। बम्बई जैसे शहर में स्वराज्य होने के तीन दिनों पहले तक झण्डे न तैयार होना ताज्जुब की बात है। झण्डे तो यहाँ इतने बिकेंगे कि अगर एक ही आदमी को ठेका दे दिया जाय तो वह लखपती बन सकता है। अरे डेढ़ बज रहे हैं। यह झण्डे वाली बात खूब रही अच्छा चलूं पैसे फिर दे जाऊंगा।"

"अजी आप के पैसे कहाँ जाते हैं, आइयेगा फिर।"

और छगन भाई को फिर भी नींद नहीं, इतनी पी जाने पर भी। पहले वह रेस में रुपये छिन जाने की फिक्र में नहीं सो सकता था। अब एक नयी कमायी का विचार उसे जागरण का सन्देश सुनाने लगा। वह झण्डों का धन्धा अगर करे तो ३-४ दिनों में सारा घाटा ही पूरा नहीं किया जा सकता बल्कि मुनाफे की भी सम्भावना है। उसकी स्त्री सीने काटने का काम जानती थी! स्त्री, लड़की और वह तीनों मिलकर तीन दिनों में कई हजार छोटे बड़े राष्ट्रीय झण्डे क्या नहीं तैयार कर सकते?

"जितने भी कपड़े घर में हों' सुबह होते ही उसने अपनी स्त्री को आज्ञा दी—"सब को काट कर झण्डे की शक्ल में सी डालो!"

"क्यों?"

"खूब बिकेंगे-आनेवाले तीन दिनों तक।"

"पर खद्दर घर में कहाँ है!"

"इन तीन दिनों मारे जोश के लोग झण्डे की शक्ल भर देखेंगे-कोई नहीं पूछेगा कि खद्दर है या देशी या विलायती।"

"रंग कहाँ है-केसरिया या हरा? अशोक चक्र का साँचा या ठप्पा भी तो चाहिये।"

—रंग

"देखो अभी तुम्हारी सोने की दो चूड़ियाँ हैं न? उन्हीं में रंग या ठप्पे आयँगे। आमदनी होते ही दो की जगह चार चूड़ियाँ आ जायंगी।"

सचमुच पहले सारी बम्बई को आने वाले स्वराज्य की उम्मीद नहीं थी। पहले १३ अगस्त तक सारे देश में तैयारियों की जो धूम मची, दिल्ली में लोगों का जमाव होने लगा, तब बम्बई के होश ठिकाने आये। अब जोश भी ठिकाने पर आया लगे लोग मकानों की सफाई कराने, फूल पत्ते, बाँस और झण्डे की इतनी माँग बढ़ी जिनका कोई ठिकाना न रहा। केवल १३ तारीख को छगन भाई ने पन्द्रह सौ झण्डे बेचे—छोटे बड़े कुल मिलाकर दो हजार रुपये में। आठ आने से लगा कर बीस रुपये तक के झण्डे छगन भाई ने तैयार किये थे, पुराने खद्दर मिल के कपड़े सड़े रेशमी वस्त्र और विलायती कपड़ों तक के जब झण्डों पर जनता टूटी तब किसी ने यह न पूछा कि क्या स्वदेशी था और क्या विदेशी! फिर काँग्रेसी द्वार बिकने वाले झण्डों में धोके का भय ही कैसे हो सकता था? जो हो, इतनी तेज बिक्री देख छगन भाई की आँखें खुल गयीं। यह तो लखपती बनने का मौका है, उसने सोचा। आज कपड़े मिलते तो वह दो दिनों में लखपती हो जाता—आजादी का पहला फल उसके ही हाथ लगता। पर कपड़ों पर कण्ट्रोल। खादी बाजार में नदारद सूत दो या नकदी। लेकिन ऐसा नायाब चान्स हाथ से निकल गया तो बड़ी बेवकूफी होगी। उसे तो जैसे भी हो झण्डे झण्डे ही तैयार कर बेचना चाहिये।

उसने एक तर्कीब सोची। अगर पड़ोसियों के पुराने कपड़े सूती और रेशमी वह खरीद ले, तो कम दाम में, चोखा काम हो

जाय। किया भी यही और दो सौ रुपये में इतने कपड़े मिले उससे कि सारी कोठरी या खोली भर गयी। फिर पाँच आदमी नियुक्त किये गये। दो रंगाई पर और तीन सिलाई पर चौथी उसकी पत्नी सीने वाली, फिर लड़की, फिर वह स्वयं। देखते देखते फिर हजारों झण्डे तैयार—कच्चे रंग सड़े कपड़ों के और हजारों ही आनन फानन में गायब। मिण्ट में इतनी जल्द सिक्के क्या ढलेंगे जिस तेजी से वह उस वक्त रुपये जोड़ रहा था। १४ अगस्त की शाम तक नये बने झण्डे भी हाथों हाथ उड़ से गये। अब उसने सारी बिल्डिंग के पुराने कपड़े खरीदे और उस सब के भी झण्डे बना बेचे।

छगन की इस आमदनी को सारी बिल्डिंग वालों ने देखा, वे उसकी चमचम चपटता से चमक उठे—

"खूब सूझी छगन भाई को।" एक ने दाद दी।

"तीन ही दिनों में साठ सत्तर हजार रुपये पीट लिये पट्ठे ने कितने झण्डे बिके और बिक रहे हैं! कोई ठिकाना है! सारा बम्बई शहर तिरंगामय हो उठा है, फिर भी तिरंगों की माँग। कागजी झण्डे तक तो मिल नहीं रहे हैं। हमारे दिमाग में व्यापारी होने पर भी झण्डे वाली यह बात नहीं आयी। असल में स्वराज्य की उम्मीद ही मुझे तो न थी।"

"काँग्रेसी होने से छगन भरोसे से व्यापार कर सका, पर पाप! सच पूछो तो! पैसे के लिए आदमी कितना नीचे जा सकता है कि राष्ट्रीय झण्डे तक को स्वार्थ में लपेटने से नहीं चूकता।"

"अजी रोजगार की नजर से कुछ भी बुरा नहीं। पुराने कपड़ों को राष्ट्रीय झण्डों में बदल कर छगन भाई ने गुलाम

—रंग

आदमी के साथ अभागे वस्त्र को भी आसमान में लहरा दिया मुक्त बना कर !"

"आप तो मजाक करते हैं, पर हमारी यह आदत ठीक नहीं, जो सामने अन्याय, कुकर्म होते देखने पर भी हम चुप रह जाते हैं छगन जैसे धोखे बाजों की जगह मस्तिष्क सुधार घर या जेल होनी चाहिये न कि स्वस्थ्य समाज।"

"कुछ कहे कोई छगन भाई समाज का साधारण सदस्य नहीं नेतावर्ग का व्यक्ति है। जिसे आप नीचता कहते हैं उसी की निसैनी से चढ़ते चढ़ते वह एम० एल० ए० पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी मिनिस्टर तक बन जायगा और यह बेईमानी दुनिया या जनता की नजरों में विशेषता बन जायगी। लोग कहेंगे कि जो चिथड़ों के झण्डे कर सकता है, वह साधारण आदमी को कहाँ से कहाँ नहीं पहुँचा देगा।"

"फिर भी नैतिक नजर से छगन भाई की करनी नीचता और सबकी लापर्वाही मूर्खता मानी जायगी और जब तक राष्ट्रों में नीचता और मूर्खता का बोलबाला है तब तक स्वतन्त्रता की बातें—गाने और तराने—धोका, आत्मप्रवंचना है।"

इसी समय छगन दो कारीगरों के साथ आया। आते ही मुस्करा कर उसने बिल्डिंगवालों से दरियाफ्त किया कि क्या किसी के पास कुछ पुराने कपड़े और हैं ? अब वह दूने दामों में खरीदने को तैयार था, क्योंकि बाजार में झण्डे मुंहमाँगे दामों बिक रहे थे, पर अब किसी के पास कपड़े थे ही नहीं। रहे भी तो द्वेष वश किसी ने दिया नहीं। पर कारीगरों को तो वह साथ लेता आया था। फिर अभी तो झण्डे के धन्धे में कमाई का पूरा चान्स आया, आज झण्डे न बिके तो इतने दिनों का बेचना व्यर्थ माना जायगा।

---

जब सारा आलम सोता है—

सो कारीगरों को बाहर रोक खोली में घुस उसने अपनी पुत्री और पत्नी के सामने यह प्रस्ताव रखा कि अपने बाकी बचे सभी पुराने कपड़े दे दें कट कर झण्डे बनने के लिए पर वे राजी न हुईं—"कन्ट्रोल का जमाना और कपड़े न मिले तो क्या हम नंगी रहेंगी ?" जुआड़ी देशभक्त के मनमें दो आने के कपड़े से पाँच रुपये कमाने का लोभ गया नहीं। ज्यादा कहासुनी होने पर उसने अहिंसा को ताकपर रख हिंसा का सहारा लिया। पत्नी ही को नहीं पुत्री को भी मार-मार कर बेदम कर दिया, फिर उसने हाथ बाँध कपड़े ट्रंकों से निकाल उसने उन्हें कोठरी मे बन्द कर दिया। क्योंकि उनकी तीव्र चीख पुकार से मकान वाले चमक रहे थे।

[ ३ ]

आजादी का उत्सव सारे भारत में बड़े जोश खरोश से मनाया गया निस्सन्देह पर बंबई में जो हुआ वह यहीं हो सकता था। तीन दिनों तक नगर और उप नगर जागते ही रहे, "प्रभुहिं मिलन आयीं जनु रानी' सा आनन्द अटूट बना रहा। जिधर देखो उधर ही विविध आकार के झण्डे, फूल-बन्दनवार बिजलियों की दीपावलियाँ। बड़ी-बड़ी बिल्डिगों ने तो मानो सरसे पाँव तक अपना सरस शृंगार किया था। जगह-जगह पर फाटक तोरण द्वार बनाये गये थे। फूलके, पत्तों के, बर्तनों के, चाँदी-सोने के।

१४ अगस्त को आधीरात-१२ बजकर १ मिनट पर-आजादी आयी तो सारी बम्बई में उजाला ही उजाला। सदियों का पुञ्जीभूत अन्धकार क्या जाने किस काल कोठर में उलूक की तरह छिप

—रंग

गया । एक मिनट के अन्दर ही राष्ट्र के माथे से कलंक की तरह यूनियन जैक सारे देश से गायब— जैसे मसीहा के छूने से कोढ़ । हिन्दी तो हिन्दी अंग्रेजी अट्टालिकाओं पर तिरंगे-चहू ढंग । इतनी जल्द यूनियन जैक हटा आखिर कैसे ? मैं समझता हूं अत्युग्र पाप की हानी मिटने पर आती है तो योंही देर नहीं लगती । इतने शीघ्र तिरङ्गा जमा कैसे ? मैं कह सकता हूँ अत्युग्र पुण्य के उदय होने में भी योंही विलम्ब नहीं होता । भावुक तरुण भारत १४ अगस्त को आधी रात तक जागता रहा-हाथों फूल फल और आँखों में श्रद्धा गंगाजल भरे-उसी स्वतन्त्रता सर्व-मंगला के स्वागत के लिए जिस पर देश के लाखों नौनिहाल कुर्बान हो गए, ललनाएं सती हो गयीं । उसी के इस्तकबाल के लिए जिसके मुक्त आगमन की भविष्यवाणी महात्मा कर रहे थे, कवि जिसके स्वागत का गीत गा रहे थे, वक्ता और लेखक गुण बखानते । दो टुकड़े हो जाने पर भी इण्डियन यूनियन के भाग वाले जितने जन आज आजाद हो रहे थे उतने हजार सालों में भी न हो पाये थे । आज प्राप्त होने वाले स्वराज्य में राम का तप, कृष्ण का त्याग, गौतम की साधना और देवप्रिय सम्राट अशोक के धर्म-दिग्विजय की आभा दिव्य झलक रही थी । इसी लिए तो कोटि-कोटि भारतीयों ने १४ अगस्त की रात को बारह बजकर १ मिनट पर स्वतन्त्र मेदिनी पर माथा टेक भव्य-भव्य विभूति से अपने को भूषित किया । कोई पूछे कि अंग्रेजों द्वारा श्मशान बनाए भारत की धरती पर विभूति कहाँ ? पर यह भूलना न चाहिए कि मरणमय श्मशान ही में नवसृष्टि, नव जीवन के बीज होते हैं । तभी तो तुलसीदास ने गाया है—"भय अङ्ग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ।"

---

जब सारा आलम सोता है—

बम्बई और दिल्ली में स्वराज्य के कारण जैसे परिवर्तन क्रान्तिकारी नजर आये वैसे भारत के दूसरे भाग में शायद ही दिखाई पड़े हों। एक रात के आधे ही भाग-१२ बजे रात से ६ बजे सवेरे ही तक—जैसे सारे का सारा वातावरण ही बदल गया। लाल किले पर तिरङ्गा, कौंसिल और वायसराय हाउस पर तिरंगा-जिधर देखो उधर तिरंगा। बम्बई में अंग्रेज और अमेरिकन कम्पनियां बड़े-बड़े राष्ट्रीय झण्डे अपनी इमारतों पर सजाए लहराए। इवान्स फ्रेजर कम्पनी ने अपने भवन पर जो लम्बा अचल राष्ट्रीय झण्डा लगाया उसमें अशोक का धर्मचक्र विद्युत गति से संचालित था। ह्वाइट वे लेडला लि०, आर्मी एण्ड नेवी कम्पनी, ताजमहल और अन्य बड़े-बड़े होटल, सेक्रेटेरियट, म्युनिसिपल भवन जिधर देखो उधर राष्ट्रीय रंग। मालवा के सामने समुद्र में स्थित छोटे पहाड़ी द्वीपों में इतनी दीपावलियाँ चमक रही थीं कि मालूम पड़ता था कि नक्षत्र लोक के छोटे छोटे गाँव बम्बई की बड़ाई देखने के लिए नीचे उतर आये हों।

तीन दिनों तक लोगों ने दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा। प्रीति-सम्मेलन, संगीत-सम्मेलन, कवि-सम्मेलन नाच, नाटक, सिनेमा-इतना उत्साह और आनन्द की शहर में अंत नहीं रहा था और १५ अगस्त के सवेरे विद्यार्थियों का टार्च लाइट जुलूस निकला—बाइसिकलों पर, १ बजे के बाद तो एक जुलूस कोई तीन मील लम्बा निकला, कांग्रेस हाउस से, जिसमें अखिल बम्बई का सहयोग। बड़े और छोटे, बाल, युवा, वृद्ध, वनिताएं, कुली, कुलीन, कलाकार, कलन्दर सभी मुक्ति के जोश से दीवाने कम्युनिस्टों ने ४२ में अंग्रेजों का साथ दिया हो पर आज तो प्रोग्रेसिव ( गतिवान ) बने बड़े-बड़े झण्डे लिए राष्ट्रीय जुलूस ही में दिखाई पड़े। इतना हंगामा बर्पा

रहा कि तीन दिनों कई आदमी तो कुचलकर मर गए और लोगों को मालूम भी नहीं हुआ कि कौन मरा था किसने मारा ?

१७ अगस्त की शाम को छगन भाई खण्डूभाई दारूवाले की दूकान पर पहुँचा तो क्या देखता है कि दूकान बन्द है और खण्डू बाहर कुर्सी लगाये बैठा गुजरती भीड़ को देख रहा है।

"क्यों तुम्हारी भी दूकान बन्द !" छगन ने पूछा—"मार डाला तब तो, तीन दिनों में बिना घर गये मैं झण्डे ही बेचता रहा, इतने बिके कि रुपये बैंक ही में रखे जा सकें, जेब में नहीं—तीनों दिनों में अस्सी हज़ार, पाँचसौ साठ रुपये हाथ लगे। अस्सी हजार की यह चेक है-बैंक बन्द होने के सबब एक मित्र को रुपये देकर उससे क्रास चेक ले लिया है, बाकी रुपये मौज मजे के लिए जेब में हैं, पर तीन दिनों से बाजार में शराब ही नदारद। बोलो यह भी कोई समझ है फिर युद्ध में भी साधु बनो और विजय में भी। अमेरिका-रूस-इंगलैण्ड जैसे सभ्य देश होते तो ऐसे मौके पर सारी होटलें सब के लिए खोल दी जातीं और किसी भी युवती का यौवन रस कोई भी चखता। याद है ? अबीसीनिया विजय पर जब इटली के तरुण स्वदेश लौटे तब मुसोलिनी ने सारे रोम की तरुणियों को हुक्म दिया था कि वे वीरों को आलिंगन चुम्बन दें।"

"कुछ भी हो" खण्डूभाई दारूवाले ने कहा-"आज मैं तुम पर बहुत नाराज़ हूँ-साला मुझे भी जो झण्डा दिया- चीथड़ों का कच्चे रंग का ! सवेरे चन्द बूंदें पड़ीं तो झण्डे के चक्र का मुंह लिप गया, फिर हवा चली तो तीनों रंग मिलकर एक हो गये। जरा ऊपर नजर उठाकर देखो और पहचानो कि यह किस देश का झण्डा है-सफल हो जाओ तो ठगी नहीं जानीवाकर ब्लैक

लेबिल की एक पूरी और पुरानी बाटल नज़र ! अरे चुड़ैल भी एक घर बख्श देती है।'

"देखो खण्डू भाई, बुरा न मानो।" छगन ने व्यापारिक गम्भीर मुंह बनाकर जवाब दिया--"धन्धा-रोजगार में सभी ट्रिक लगाते हैं। आमदनी असिल ईमान से नहीं, टिक से, युक्ति से होती है। सीधी अंगुली से जब घी तक नहीं निकलता तब रोजगार कोई क्या कर पावेगा ?"

"तो करीब लाख रुपये के सड़े और कच्चे झण्डे मुंहमांगा दाम लेकर तुमने बेचे ! शैतान की दोहाई ! मैं समझता हूँ बरसात के एक ही छींटे में तुम्हारे बेचे सभी झण्डे भण्डहर हो गए होंगे ?"

"यह बरसात साली जरूर बुरी रही" मुंह बिगाड़कर छगन ने मंजूर किया-शिकायतें चारों तरफ से होंगी। पक्के रंग झंडे भी तो बिक जाते ? फिर भी राष्ट्रीय झंडा फीका पड़ा तो पड़ा मेरी जेब में रकम तो आ गयी। रकमदार के खिलाफ शिकायत भूलते चमक पसन्द दुनिया को देर नहीं लगती।'

खूब कांग्रेसी हो भाई ! तीव्र दाद दी खण्डू भाई ने-"चित्त भी तुम्हारी पट्ट भी तुम्हारी। छः महीने पहले जब 'शराब पीना पाप है' नारा के साथ गाँधी जी का चित्र बाहर लटकाकर अंदर चोरी से शराब बेचता था तब आप लेक्चर देते थे कि ऐसा करना घातक पाप है। पर आज ? ये नकली झण्डे ??"

"छः महीने पहले मैं गधा था खण्डूभाई ! मंजूर करता हूं।" अपने कान पकड़कर छगन ने जवाब दिया—"पैसा तो फरेब से आता है-दगा से-चाहे जब जिस शक्ल में वह हो। खैर मैं

दो दिनों में खोली; नहीं गया–झण्डे बेचते बेचते थक गया हूँ–कुछ पिलाओ मुझे।"

"एक सौ पचीस रुपये बोटल मिलेगी–" नखरे से झण्डू ने सुनाया—"कांग्रेसी सरकार ने आजादी की खुशी में चार दिनों के लिए शराब की सारी दूकानें बन्द करा दी हैं। आप तो कांग्रेसी—जानते ही होंगे ?"

"सवा सौ ले लो पर देना वही ब्लैक लेबिल जानीवॉकर ही।"

"मंजूर ! बशर्ते कि पीने में बन्दे को भी साझीदार बनाया जाय। तुम्हारे पास राजा इस वक्त माल मुफ्त है–घबराने की जरूरत नहीं।"

"यह भी मंजूर ! चलो जल्द करो !"

"दोनों दूकान अन्दर दाखिल हो गये। दरवाजे अन्दर से बन्द कर दिए गए। पूरे दो घण्टे तक दोनों छकते रहे, फिर महकते और चहकते जब बाहर निकले तब छगन भाई मस्ती से खण्डू के गले में दाहनी बाँह डाले गा रहा था—

"पीके कल हम-तुम जो निकले
झूमते मैखाने से !"

और दोनों रोशनी देखने को चले। कितनी रोशनी उस दिन भी थी बम्बई में ! लक्ष-लक्ष दीपावलियां ! ऊपर, नीचे, अगल-बगल, मोटरों में ट्रामों में–कितना प्रकाश, कितने पुष्प कितनी प्रसन्नता ! बिजली के धक्के से जलकर या भीड़ से कुचले जाकर कई आदमी मर गए, सुना सब ने, फिर भी स्वतन्त्रता की नव-चेतना से चंचल नाचते नवयुवक ट्रामों की छतों पर नाचते, गाते, चिल्लाते, सीटी, बाँसुरी, शंख और ढोल बजाते ही रहे।

---

जब सारा आलम सोता है—

सड़कों पर चलना मुश्किल फिर भी आसानी से उस मुश्किल में लोग-लुगाइयाँ ( भी ! ) तैर रही थीं; धक्के खाती ! मन्दिर के धर्म-धक्के संकुचित, पर, स्वातन्त्र्य के कर्म-धक्के चौड़े ! मगर बहते पानी और भीड़ ही में तो मल और निर्मल सीने से सीना सटाकर सरकते हैं ?

"देखो--खण्डू भाई व देखो-परियों का झुण्ड !" चूर छगन ने दूर पर घूरते हुए खण्डू को दिखाया—"स्वराज्य होते ही बम्बई स्वर्ग हो गयी और उतर आयीं अप्सराएँ ! आज तो भारत में मुसोलिनी की ज़रूरत थी।"

"क्यों ? उस गड़े मुर्दे को उखाड़ने की आवश्यकता ?"

"उस झुण्ड की किसी एक सुन्दरी का चुम्बन अगर कर लूं तो क्या होगा ?" बहका छगन।

"अजी होगा क्या, कांग्रेस का राज और तुम ठहरे कांग्रेसी। स्वराज्य में न तो कभी किसी का बाल बाँका हुआ है न तुम्हारा होगा।"

"तो मैं तो एक को चिपटाता हूं। तुम क्या करोगे ?"

"मैं तो भाग खड़ा होऊंगा। अरे मैं ! ऐसी ग़लती करता नहीं—नहीं तो इतने जूते पड़ेंगे कि जानीवॉकर की टाँग टूट जायगी।"

मगर छगन की जेब में लाख रुपये, पेट में तेज़ शराब, मनमें मोहक पाप—सो भी राष्ट्रीय पाप--वह सही ग़लत समझने के नाकाबिल हो गया उस वक्त। झुण्ड की ओर बेतहाशा झपटकर एक तरुणी से वह लपट ही गया !

खण्डू इतना मतवाला नहीं था--'पुराना' वह। छगन के व्यवहार से वह पहले घबराकर भागने पर आमादा, फिर भीड़

--रंग

में उसकी क्या गति होती है, यह देखने की इच्छा से सौ कदम पीछे हटकर वह रुक रहा। देखा उसने आक्रमण के बाद ही शराबी छगन की चारों ओर घनीभूत होती भीड़—फिर शोर—फिर छगन का चीखना। शायद लोग उसे मार रहे थे—शायद वह मार डाला जाय—मार डाला गया क्या? क्योंकि भीड़ पुनः बहते दरिया की तरह स्वाभाविक चलने लगी। क्या वह कुचल डाला गया??

खण्डूभाई सरपर पांव रखकर भीड़ को चीरता, अपनी दूकान-परित्राण-की तरफ भागा और पहुँचते ही दरवाजे बन्द कर, मुंह बन्दकर, आँखें बन्दकर सो रहा।

सवेरे उठते ही गुजराती दैनिक में उसने पढ़ा कि—"प्रिन्सेस स्ट्रीट के नाके पर नशे से लड़खड़ाकर गिरने के सबब कोई शराबी पहले तो जनता के द्वारा कुचला गया, फिर राष्ट्रीय झंडों से सजी शहीदों के चित्रों से सुशोभित एक मोटर ट्रक के नीचे पिसकर उसकी लाश की ऐसी चटनी बन गयी कि शनाख्त करने की कोई सूरत ही न बच रही।

"तो क्या पाप का दण्ड मिलता है? और इसी जन्म में?" प्रभात नवरंगी में देखा तो खण्डूभाई के चेहरे पर रंग नहीं!

———

# मलंग

चाचाजी सारे मलंगपुर शहर के 'चाचाजी'। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, छोटे-बड़े सभी चाचाजी को 'चाचा जी' ही जानते हैं। उनका और भी कोई नाम है, किसी को पता नहीं, नहीं पता लगाने की आवश्यकता ही।

हवा और पानी प्रकाश की तरह चाचा जी सारे मलंगपुर के प्राणों के रक्षक और पोषक—हिकमत और आयुर्वेद दोनों ही के चमत्कारिक दस्तशफ़ा या पीयूषमणि। वह संस्कृत, पढ़े, फारसी पढ़े, अंग्रेजी में भी बी० ए० पास।

बी० ए० पास मात्र से चाचाजी का अंग्रेजी-ज्ञान नापना उचित न होगा। बी० ए० तो बहुत पास करते हैं, पर पढ़ते हैं बड़े शौक से विरले ही। चाचाजी का अध्ययन बड़ा विशद-बड़ा विविध। बात-बात में वह बड़े बड़े विदेशी और स्वदेशी विचारकों, कवियों का उद्धरण दिया करते।

चाचाजी में सबसे बड़ा गुण एक-वह संसार को कुटुम्ब मानने वाले। वह सबका भला चाहते, सबको दवा देते। गंभीर रोगियों की सेवा सुश्रूषा रात-रात भर जागकर भी चाचाजी करते। साल भर पहले रौशनअली खाँ के लड़के नईमखाँ को कैसा भयानक कालरा हुआ था। सारे डाक्टरों ने जवाब दे दिया, खाँ साहब के घर में काला स्यापा छा गया, तब आये वे बुलाए चाचाजी।

आते ही पहले उन्होंने रौशनअली खाँ को आड़े हाथों लिया-

"अफसोस की बात है खाँ साहब ऐसे वक्त आपने मुझ नालायक को नहीं याद किया। आखिर मैं किस मर्ज की दवा था। मैं डाक्टर नहीं, नश्तरबाज नहीं, कड़वी और कड़ी दवाएं देने वाला भी नहीं खां साहब,-तोबा-तोबाकर कहता हूँ—मैं परमात्मा का नाचीज़ बन्दा हूं—घास वैद्य-जड़ी बूटी, घास-पात मिट्टी-राख याने खुदा के फजलोकरम से हर एक रोग को दूरकर प्रत्येक रोगी की खिदमत करता हूं।' इसके बाद सारी रात सेवा औषधि और जागरण कर चाचाजी ने खाँ साहब के नौजवान लख्ते जिगर को बचा ही लिया।

मल्लू ग्वाले को एक ओर कोढ़ हुई दूसरी ओर सारे के सारे गाहक छूट गये-कोढ़ी से छूतछूआ दूध कौन ले। इस कोढ़ में खाज की कहावत पूरी हो गयी। लेकिन चाचाजी ने मल्लू ग्वाले को कभी अछूत न माना। मलंगपुर वालों को ललकारकर उन्होंने सुनाया—"तुम लोग पागल हो, कोढ़ छूत का रोग नहीं है। ईसामसीह कोढ़ियों का गाल चूमा करते थे। वह पागल नहीं थे। फिर कोढ़ हो मल्लू ग्वाले को और उसकी रोजी बन्दकर मार डाला जाय सारे कुनबे को-यह भी कोई इंसाफ है यारो! रोगी दया का पात्र है, दया का, नफरत का नहीं। भूल किससे नहीं होती, पाप किससे नहीं होता, रोग किसे नहीं होता। अगर हम एक दूसरे के रोग-सोग में काम नहीं आयेंगे तो अलग अलग मर जायेंगे।" और चाचाजी ने मल्लू ग्वाले को भी चौचक्क चंगा कर दिया पर यह केस रोशनअली के फरजन्द की तरह दो ही एक दिन में सफल नहीं हो सका। इसमें चाचाजी को छः महीने तक कड़ी नौकरी करनी पड़ी।

ऐसे दस पाँच वाक़यों के बाद तो चाचाजी का नाम मलंगपुर और उसके आस पास के सैकड़ों गाँवों तक धनवन्तरी और

---

लुकमान की तरह मशहूर हो गया। जिस रोगी को देखो वही चाचाजी का मुरीद। सभी का रुख उन्हीं के बंगले की तरफ। चाचाजी घर के खुशहाल। उनके स्वर्गीय पिताजी ने लकड़ी के धन्धे में काफ़ी पैदा किया था जिससे मलंगपुर में खासा-सा बँगला तो बनवा ही लिया बैंक में भी जमा किये कोई सौ हजार रुपये। ज़माना गुज़रा चाचाजी के पिताजी को गुज़रे। जिस साल के जिस महीने में चाचाजी की शादी हुई और बहू का गृह-प्रवेश हुआ उसी साल के उसी महीने के उसी दिन उनके पिताजी का स्वर्गवास होगया। सारे मलंगपुर ने कहा—"भगवान ही मददगार है, लड़की तो बड़ी कुलच्छनी आयी!" मुर्दा फूँक कर मूड़ मुड़ाये आधी रात में घरपर आकर चाचाजी ने स्वयं अपनी स्त्री को देखा तो दाँतों तले अंगुली चाबकर रह गये—"भगवती, इतनी रूपवती!" इस पर चाचाजी ने तनक कर जवाब दिया—"भगवान किसी का भाग मुझ जैसा न बनावें—बन्दर के हाथों अगूर का गुच्छा लग गया!" मतलब यह कि देवीजी जितनी ही सुन्दरी थीं, चाचाजी वैसे ही असुन्दर थे। लंबी नाक, छोटी आंखें, विद्वत्ता सूचक पतले होठों वाला उदारता सूचक चौड़ा मुँह, शरीर में सबसे बड़ा पेट, फिर खोपड़ी। हज़ार गुड़ होनेपर भी कुरूप पति देवीजी को फूटी आंखों भी न सुहाया।

इधर चाचाजी के स्वभाव में स्त्रैणता बिलकुल नहीं। पत्नी की उपेक्षा की जैसे उन्हें अपेक्षा रही हो। अपना कुरूप उसे पसन्द न आने से गोया खसकम जहाँ पाक हो गया। अब हज़रत सारा दिन मर्ज और मरीज़ों के फेर में बिताने लगे। अक्सर देर करके रात में घर लौटते और तब भी मरीज़ों का

झुण्ड संग लगाये। असहाय अनाश्रित रोगियों को वह सहायता-आश्रय भी उत्साह से देते थे जिसे पत्नी बिल्कुल नापसन्द करती और रोगियों के सामने भी चाचाजी को डाट देती।

और चाचाजी पत्नी की डाँट सुन लेते-मन में उसके दुखों का कारण अपनी कुरूपता मानते हुए-"सचमुच अभागिनी के भाग्य फूट गये। बेशक ऐसी सुन्दरी को कोई श्यामसुन्दर नौजवान मिलना चाहिए था न कि मुझ जैसा कुरूपनिधान। दिनभर कुढ़ते-कुढ़ते अगर इसका दिमाग़ बिगड़ भी जाय तो क्या ताज्जुब।"

एक रात बात यहाँ तक बढ़ गयी कि चाचाजी जब मरीज़ों के झुण्ड के साथ आये और उनकी दवा विश्राम की व्यवस्था करने लगे तब घर बाहर निकलकर जबरदस्ती उनकी पत्नी ने उन्हें अन्दर खींच लिया। घसीटती हुई सोन कमरे मे ले गयी और पलंगपर तक पहुँचाकर ही दम लिया। बिछी सेज पर कुरूप पति को बल से बैठा चाचीजी जब दरवाजा बन्द करने चलीं तब चाचाजी ने पूछा—

"कहाँ जाती हो? मेरे पास आओ और जो भी कहना-सुनना हो जल्द कह डालो जिससे मैं उन रोगियों की देखभाल कर सकूं।"

"मर जायं रोगी-" दांत पीसकर पत्नी ने कहा-"मुझे क्या चुड़ैल की तरह चक्कर काटकर अपने बंगले की पहरेदारी के लिए ब्याह कर लाये हो। तुम दिन भर घूमते हो, मैं कहाँ जाऊं?"

"हिन्दुओं मे तलाक नहीं........।" खिन्न चाचाजी ने कहा-"नहीं तो मैं तुम्हें मुक्त कर देता। मुझे फुर्सत नहीं, तुम्हें चैन नही। मैं रोगी पसन्द, तुम भोगी पसन्द--असिल मे पण्डित ने

पत्रा गलत देखकर हमारे सम्बन्ध की स्वीकृति दे दी थी। तभी तो दोनों पक्षों को शान्ति नहीं।"

"सारे शहर की दवा जिसके पास" पत्नी ने वक्र ताना दिया—"उसके पास अपनी औरत की दवा नहीं।"

"औरत की दवा अश्विनीकुमारों या विधाता ने बनायी ही नहीं।" हंसकर चाचाजी ने कहा और उठकर स्त्री की कोमल कलाई पकड़कर पलग की तरफ खींचा—"दरवाजा खुला रहने दो, उन मरीजों का इन्तजाम करना है कि। आओ, पास बैठकर जल्द बतादो कि क्या चाहती हो?"

"तुम्हारे मुंह से बदबू आती है-पास मैं बैठ नहीं सकती; पर जाने नहीं दूंगी। मेरे रोगी अभागे-तुम अब कमरे के बाहर नहीं जा सकते।" कहकर पत्नी ने दरवाजा सावेश बन्द कर दिया। फिर वह जमीनपर चटाई बिछाकर पड़ रही पर उस कुरूप पति के पलंग पर न गयी न गयी।

उस दिन पहली बार चाचाजी ने इस बात पर विचार किया कि ऐसी सुन्दर नारी का हृदय अगर जीता जा सके तो कम आनन्द की बात नहीं। उस दिन से पत्नी के प्रसन्नार्थ रोगियों को घर पर लाना बन्द कर दिया। स्वयं भी नियमित रूप से शाम होते ही घर लौटने लगे और जैसे कोई मचले बच्चे को चुमकारकर शांत करना चाहे वैसे ही वह चाचीजी को हर तरह से अपनी ओर आकर्षित करने लगे। गहने बनवाये, साड़ियां खरीदीं, तेल और फुलेल खरीद कर नजर किए। मगर पत्नी प्रसन्नार्थ उक्त कार्यो से न तो चाचीजी की लम्बी नाक छोटी हो सकी, न छोटी आ बड़ी हो सकीं, उनके चमगीदड़ी चीमड़ नाखूनी शरीर में खून का गुलाबी रंग भी तो न दौड़ पाया!

---

—मलंग

इनका चाचाजी को बड़ा ग़म रहा। ग़म अपनी ख़ुशी का नहीं--वह नाख़ुशी में भी ख़ुश रह सकते थे, पर चाचीजी का रोतड़ा चेहरा देखते ही वह समझ जाते कि यह मेरी कुरूपता ही के सबब है। वह अक्सर सोचते कि यह शादी ठीक नहीं हुई, फिर भी चाचीजी दूसरे की होकर भी ख़ुश रहें यह उदार विचार चाचाजी के मन में कभी न आता। उन्हें मन ही मन विश्वास था कि आज नहीं तो आगे कभी न कभी उनका अन्तः सुरूप पहचानकर चाचीजी बाहरी कुरूपता क्षमा कर देंगी।

—:*:—

रोशनअली ख़ाँ ऐसे बीमार गोया बचेंगे ही नहीं। सबके बाद चाचाजी से इलाज कराना शुरू किया। उन्हें फ़ायदा भी महसूस हुआ। इलाज के सिलसिले में एक दिन बाज़ार में हज़ार तलाशने पर भी सही गुलकन्द नहीं मिला। उस वक्त चाचाजी रोशनअली के घर पर बीमार की तीमारदारी में थे। उन्होंने लड़के नईमख़ाँ को गुलकन्द लाने के लिए अपने बंगले पर भेजा।

जब नईम बंगलेपर पहुँचा तब घर का नौकर सागभाजी लाने बाज़ार गया था और चाचाजी की सुन्दरी नहाकर चिकने, लम्बे, गफ़न बाल संवारती आईने में अपना अद्भुतरूप निहार स्वयं सोच रही थीं कि--मैं भी किस बन्दर के पाले पड़ी जो आदमी होकर आदमी नहीं, जवान होकर नौजवान नहीं नज़र आता--रानियों को लजाने वाला मेरा यह रतिरूप !

नईम ने दस्तक दी, देवीजी ने दरवाज़ा खोला यह सोचते कि नौकर सौदा लेकर आया है--

"इतनी देर क्यों लगायी ?" प्रश्न करने के बाद उन्होंने

---

आगन्तुक को देखा। सुन्दर दर्शन नौजवान, अचकन, चूड़ीदार पाजामा, जरी के लाल जूते।

"मैं चाचाजी के कहते ही भागता ही तो चला' आ रहा हूं।" नईम ने उनकी तरफ अच्छी तरह तररकर जवाब दिया।

"चाचाजी!" गम्भीर होकर देवी जी ने कहा--क्यों भेजा है उन्होंने-तुम्हें-आपको?"

"गुलक़न्द लेने के लिए। एक छटाँक चाचाजी ने माँगी है।"

"गुलक़न्द है तो पर ज़रा ऊंचे पाटेपर है। ज़रा ठहर जाइए नौकर आता होगा।"

बैठक में बुलाकर देवीजी ने नईम को कुर्सी पर बैठने का संकेत किया मगर वह भलमनसाहत का नाटक करता बैठा नहीं।

"बैठ जाओ, बैठते क्यों नहीं?"

"आप खड़ी रहें तो मेरा बैठना बदतमीज़ी होगी। आप भी बैठें....।"

"मुझे काम है—पर यह नौकर नहीं गरियार बैल है--एक घण्टा हो गया गये और पास ही बाजार है। तुम-आप बैठो-मैं भी बैठती हूं....?"

नईम बड़ा सुन्दर था, उसे देखकर देवीजी द्रवीभूत हो उठीं। देवीजी भी सुन्दर थीं! नईमखाँ ने इस नमकीन सत्य को ताड़ा। सभ्यता पूरी होने पर भी दोनों तरफ एक सनसनी सनकी।

"मुझे यहाँ बैठना मुनासिब नहीं।" वह उठा।

"मुझे भी देर हो रही है। चाचाजी और अब्बाजी दोनों ही इन्तज़ार में होंगे।"

"पर गुलकन्द ऊँचे पर है, मेरे हाथ पहुँचते नहीं, नौकर बाजार जा मरा है।"

- - - - - - - - - - -

—मलंग

"मुनासिब समझें तो मुझे वह जगह बतलावें जहाँ गुलकन्द है, शायद मेरे हाथ पहुँच जायं।" नईम ने प्रस्ताव किया।

क्या यह प्रस्ताव है? इसका समर्थन होना चाहिये या खण्डन। बड़ा सुन्दर नौ जवान। बड़ा नीरस जीवन। नौकर बड़ा आलसी। हाँ हाँ कोई कब तक रुकेगा।

"चलो, तुम्हारे हाथ पहुँच सकें तो मटका उतार गुलकन्द खुशी से ले जाओ।"

आगे-आगे देवीजी, पीछे नईम, तीसरे कमरे में गुलकन्द। दोनों वहाँ तक चुपचाप गये। वहाँ पता चला कि गुलकन्द नईम खाँ की पहुँच से भी परे था।

"अब?" देवीजी ने नईम खाँ की तरफ देखा।

"अब?' नईम ने भी आँखें मिलालीं।

"तुमतो बड़े लम्बे बनकर चले थे, मगर देखा गुलक़न्द का मटका फिर भी दूर का दूर!" ताना दिया बरबस, देवीजी ने।

"गस्ताखी माफ हो, आप और मैं दोनों अगर मिल जायँ तो गुलक़न्द की मटकी हमसे दूर नहीं।" नईम को खूब सूझी, पर देवीजी की समझ में नहीं आयी।

"मिलने के क्या मतलब?"

"मतलब यह कि गुलाम बैठ जाता है, आप उसके कन्धों पर खड़ी हो, बीमार की हालत पर रहम कर मटकी उतार दें।"

बीमार की मदद, भूखा मन, नौजवान के कन्धे, सन्नाटी कोठरी—यहाँ पाप कहाँ, बीमार की दवा का बहाना जो है। बिना आगे बोले आँखों ही से देवीजी राजी हो गयीं। नईम घुटने टेक कर बैठ गया। दीवार से सटे शरीर को सँभालती

देवीजी उसके कन्धेपर चढ़ने लगीं--एक पैर--दूसरा भी। सँभाल कर नौजवान ने बोझ को उठाया—कितना हलका-फुलका—सारी ज़िन्दगी काँधे पर लादकर ढोने के काबिल। गुलक़न्द को भूल नईम बोझ की सोचने लगा। पसीने, पसीने।

देवीजी भी मटके की तरफ उठती सोत्र-सागर में मग्न। क्या पर पुरुष के कन्धे पर उठना उचित? अनुचित क्या? बीमार के लिए अनुचित क्या? वसमें मेरा अपना कोई राग नहीं, रंग नहीं, लेप नहीं, वासना नहीं। पर कमरा कैसा एकान्त, तरुण कितना नौजवान, मन कैसा क्षण-क्षण बदलने, मचलने वाला।

"मिल गया मटका?"

"मिल गया--बड़ा वज़नी है।"

"सँभालियेगा—मैं धीरे धीरे बैठता हूं।"

"मैं काँप रही हूँ, बोझ भारी है।"

"मटका गिरेगा तो मैं नहीं उठूँगा, कपड़े खराब हो जायँगे। ज़रा और सँभालिये।"

"ओ माँ ाँ ाँ ाँ!' देवीजी के हाथों से गुलक़न्द यों गिरा कि नईमखाँ सरसे पाँव तक नहा उठा। इसके बाद वह खुद घबराकर कर कन्धे के नीचे की तरफ टूटी। अब गुलक़न्द से नहाने का ग़म भूल नईम ने देवीजी को ज़मीन से गिरने से बचाने के मोह में अपनी भुजाओं में बाँध लिया। उसके माथे का गुलक़न्द देवीजी के आवेश से खुले होठोंपर तरातर टपकने लगा।

जिस वक्त देवीजी के मुँह से चीख निकली थी उसी वक्त नौकर सौदा लेकर बंगले में दाखिल हुआ। तेजी से अन्दर पहुँचकर उसने देखा भंडार घरमें एक मर्द को देवीजी से उलझते।

---

—मलंग

चोर का सन्देह उसे हुआ और शोर मचाना शुरू किया उसने। देखते-देखते सारा मुहल्ला जुड़ गया। नईम खाँ और देवीजी अभी सावधान भी न हो पाये थे कि चोर को पकड़ने के लोभ में मुहल्लेवालों ने उस कमरे का दरवाजा बाहर से बन्द कर दिया। अब देवीजी और नईम खाँ अन्दर और बाहर एक हंगामा।

"पुलिस को बुलाओ।"

"पुलिस के पहले चाचाजी को बुलाना मुनासिब होगा। इज्जत की बात है। औरत बदमाश है तो क्या खुद चाचाजी तो साधु हैं।"

"बेशक, बेशक!" सबने स्वीकार किया और कुछ चाचाजी को बुलाने झपटे।

—:o:—

उक्त घटना के दूसरे दिन चार पाँच आदमियों की एक टोली चाचाजी के बंगले की तरफ सावेश बातें करती चली जा रही थी।

"नईम खाँ कितना बड़ा नालायक—जिन चाचाजी ने उसकी जान बचायी उन्हीं की पत्नी पर डोरे डाले! दुनिया में आदमियत तो अब रही नहीं गयी है।"

"ऐसे आदमी का गला काट लेना चाहिये।"

"देखा नहीं उसी के बाप रोशन खाँ का मुँह कल—मारे शर्म के—स्याह पड़ गया था। खुद चाचाजी ने रोका नहीं तो मर्द रोशन खाँ ने नालायक बेटे का खून कर डाला होता।"

"खुद चाचाजी ने रोका नहीं तो कल मलगपुर में खून की नदी बह गयी होती—सिख और हिन्दुओं ने मुसलमानों के मुहल्लों में हा हा कार उठाकर चाचाजी की बेइज्जती का बदला लिया होता।"

---

"मगर साधु-स्वभावी चाचाजी को बदले की भावना छू तक नहीं गयी है। कमरे का दरवाजा खुलने पर वह अपनी पत्नी या नालायक नईम पर शब्द या इशारे से भी नाराज नहीं मालूम पड़े। पहले देवीजी को उन्होंने गुलकन्द से लिसलिस कपड़े बदलने को कहा और फिर नौकर को आज्ञा दी कि नईम खां को वह गुसलखाने की राह दिखाये। हिन्दुओं द्वारा बहुत क्रोध दिखाये जाने पर उन्होंने गम्भीर भाव से कहा- 'पहले समझ लेना चाहिये घटना या दुर्घटना क्या है! कल १५ अगस्त है, भारत को स्वराज्य मिलने वाला है। ऐसे मौके पर बे बात की बात पर आज मलंगपुर में कौमी दंगा हो जाय तो सारे देश पर उसका प्रभाव बुरा पड़ेगा।" इसपर लोगों ने जब आग्रह किया कि पापी नईम को पुलिस के सपुर्द कर दिया जाय तब सर हिलाकर ना करते हुए चाचाजी ने कहा—"अब स्वराज्य होगया। अब हमें पंचायतों पर विश्वास करना चाहिये, न कि अदालतों और पुलीसपर। सबसे बड़ी पुलीस लोकमत है।" इसके बाद उसी वक्त। चार पंच चुने गये जिसके सरपंच निर्वाचित हुए स्वयं चाचाजी। पंचों में अभियुक्त का बाप रोशन खाँ भी और कल ही सबने एक राय से चाचाजी को पूर्ण अधिकार देदिया कि स्त्री और पुरुष दोनों ही की परीक्षाकर वह जो चाहें वही निर्णय दण्ड या मुक्ति दें—"बखुदा चाचाजी!" रोशन अली ने डबडबायी आँखों से जमीन की तरफ देखते हुए कहा- 'इस नालायक को कत्ल की सजा भी अगर आप देंगे तो गर्दन इसकी काटेगा बन्दा—अपने हाथों ताकि आने वाली पीढ़ी पर नुमाया हो जाय कि नालायक का कोई बाप नहीं-खुदा नहीं और बेवकूफ लोग लुराई करने के कत्ल ही तोबा करलें।' सच कहें

—मलंग

तो रोशन अली इन्साफ पर था।"

"पर रोशन अलीका वह रुख मलंगपुर के मुसलिम लोगियों को सुहाया नहीं। मैंने सुना कुछ मुसलमान खुले आम कहते फिरते हैं कि नईम खाँ ने बुरा नहीं अच्छा किया और अब वह औरत हिन्दू नहीं मुसलमान है। आज अगर चाचाजी ने नईम खाँ को कोई कड़ी सजा दी तो कुछ मुसलमान सामना करेंगे।"

"सामना करेंगे तो समझ लिया जायगा। मलंगपुर के हिन्दू कुछ चूड़ियों का धन्धा नहीं करते। चाचाजी जितनी चाहें उतनी सख्त सजा पर स्त्रीगामी को दें।"

"अच्छा तुम सरपंच होते तो ऐसे गुनहगार को क्या दण्ड देते?"

"कुत्तों से नुचवा डालना।"

"शास्त्रों में व्यवस्था है—विष्ठा के गढ़े में डुबोने कुछ मल खिलाने के बाद ऐसे नीच की गर्दन काट डालना।"

"मुसलमानी वक्तों में भी प्राणों से ही परायी औरत ताकने के पाप का प्रायश्चित्त होता था।"

"चाचाजी दण्ड देंगे और उचित, क्योंकि वह संस्कृति फारसी, अंग्रेजी तीनों भाषाओं के विद्वान हैं और तीनों की व्यवस्था पद्धति से परिचित हैं।"

इस तरह गाल मारती जब यह टोली चाचाजी के बंगले पर पहुँची उस वक्त वहाँ पूरी भीड़ इकट्ठी थी-हिन्दू मुसलमान और सिखों की। सभी उत्तेजित मालूम पड़ते थे मालूम पड़ता था हवामें जोश, कब क्या हो जाने का अन्देशा। बंगले के बरामदे में बड़ी चौकी थी—जिसपर चार पंचों के साथ सरपंच बैठे थे। पंचों की दाहिनी ओर देवीजी बैठीं थी, बायी ओर नईम खाँ।

सबके जुड़ जाने पर विनय से नम्र और गंभीर चाचाजी उठे अपना फैसला सुनाने। फैसला लिखित था। वह अविकृत सुस्पष्ट स्वर से पढ़ने लगे —

"कल जो कुछ हुआ" चाचाजी के शुरू करते ही एकत्र लोगों में बिलकुल सन्नाटा छा गया—"कल जो कुछ हुआ, मैंने अच्छी तरह से जाँच करके यही समझा है कि उसमें नईम खाँ या मेरी पत्नी का कोई दोष नहीं और सारे समाज का दृष्टि दोष मात्र है। स्त्री सती हो तो क्या कहने, पुरुष का जीवन शिवाकार हो जाय। पर सतीत्व जबरदस्ती अबलाके माथे पर बलाकी तरह लादने की चीज़ नहीं। सतीत्व तो हृदय से प्रेम से, सद्बुद्धि से पैदा होता है। स्वतंत्रता मर्दों ही के लिए नहीं, औरतों के लिए भी उतनी ही जरूरी है। आधे अंग के परतन्त्र रहते कोई स्वतंत्रता का सर्वांगीय उपभोग नहीं कर सकता। सो, नईम के साथ कार्यवशात: अन्दरी कमरे में जाने के लिए मेरी देवीजी सर्वथा स्वतंत्र थीं गोकि नौजवान के साथ नवयुवती को एकान्त में रहना खतरनाक बात है यह सबको जानना चाहिये। मगर हम सब नहीं जानते। इसका कारण शिक्षा का अभाव जिसका कारण विदेशी राज का प्रभाव है। फिर भी नवयुवती स्त्री को नवयुवक के साथ एकान्त में जाने में शील-संकोचमय भय होना ही चाहिये। पर-खेद की बात है कि मेरी देवीजी के मन में ऐसी कोई भावना न उठी। एकान्त में जाने ही तक नहीं पर पुरुष के कन्धों पर चढ़ने तक उनका शील कांपा नहीं। मैं नहीं मानता कि इस गुलकन्द उतारने में बीमारके प्रति भूतदया मात्र थी। मैं इसमें कुछ कमज़ोरी भी मानता हूं।"

"लेकिन मित्रो!" और भी स्पष्ट स्वर से चाचाजी पढ़ने

---

लगे-"उक्त कमजोरी देवीजी की नहीं मेरी है। मैं इनके बिलकुल नाकाबिल-आप हम दोनों की शक्ल ही से समझ सकते हैं। इतने पर भी भाग्यवान होता तो मैं सुखी रह पाता, पर देवीजी का प्रसाद प्रेम पात्र मैं कभी न हो सका। यह मेरा दुर्भाग्य है जो गृहलक्ष्मी के निकट रहने पर भी मैं दारिद्र्य की मूर्ति बना फिरता हूँ। मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं। सारे देश के दरिद्र होने से दरिद्रबन कर रहने ही में न्याय मालूम पड़ता है—ऐसा लगता है गोया मैं भी सबके साथ सबका हूँ। पिता की कृपा से मुझे घर और घरनी मिली तो, पर मैं चाहता दोनों ही को नहीं। मैं बराबर इस चिन्ता से था कि कोई ऐसी युक्ति मिले कि मैं बेफिक्र हो जाऊँ और देवी रहें प्रसन्न। आखिर में कलकी घटनाने मुझे प्रकाश दिखाया है। आज मैं प्रकाशमय हूँ। आज सारा भारत प्रकाशमय है आज स्वतंत्रता का दिवस है। आज हरेक भारतीय स्वतंत्र है। आज देवीजी स्वतंत्रहैं, नईम खाँ और बन्दा भी। मैं लिख कर अपनी पत्नी को नईम खाँ से शादी करने की स्वतंत्रता देता हूँ और शादी के बाद ये लोग नाशाद न रहें इसलिए अपना बंगला और पचास हजार रुपये भी देता हूँ। इस सबके बाद मैं दुआ—आशीर्वाद देता हूँ कि जिसमैं खुश न रख सका उसे नईम खाँ खुश रखे, खुदा खुश रखे। बंगले की रजिस्ट्री मैंने देवीजी के नाम करदी है, रुपये भी उन्हीं के नाम बैंक में जमा कर दिये हैं-चेकबुक और कागजात ये हैं।"

और मलंगपुर शहर की तारीफ अभी मैंने की नहीं। यह शहर अमृतसर लाहौर के बीच हिन्दुस्तान पाकिस्तान की सीमा से आठ मील के फासले पर हिन्दुस्तान में है। आज शहर की आबादी क्या होगी—शैतान ही जानता होगा, पर जब की बात

जब सारा आलम सोता है—

में लिख रहा हूं तब मलंगपुर की आबादी पचास हजार प्राणियों की थी जिसमें पचास हजार सिख, सात हजार हिन्दू और अठारह हजार मुसलमान थे।

मलंगपुर वालों का विश्वास है कि इस शहर में सदियों से कोई न कोई मलंग हमेशा होता आया है। यह मलंग क्या? मुसलमानों के एक तरह के फकीर को मलंग कहते हैं। ये मलंग मानव मात्र के कल्याण कामी और अन्तर्यामी के अनन्य उपासक होते है। बम्बई के आस पास हाजी मलंग कितने मशहूर हो गये हैं। उनकी मजार की जियारत को लाखों आदमी जाते हैं और मुसलमान ही नहीं, हिन्दू, ईसाई, पारसी सभी जाति के दुखी और श्रद्धालु। कहते हैं बाबा हाजी मंगल से जो माँगो वही मुराद पूरी करते हैं। सुनता हूँ बम्बई के जुआड़ी तक हाजी मलंग से सट्टे के अंक तक माँग लाते हैं। जो हो···पर यह बात मलंगपुर के बारे में भी सच कि सारे पंजाब में जहाँगीर के जमाने से आजतक हजार बार हिन्दू मुसलिम सिखों के दंगे फसाद हुए होंगे और मलंगपुर में कभी कुछ न हुआ। क्योंकि वहाँ हमेशा एक न एक मलंग उपस्थित रहता, इन्सानों को मजहब के नाम पर मर मिटने से बचाने के लिए मजहब के सही मानी-मुहब्बत समझाने के लिए। मलंग पुर में जब जो सर्वहित चिन्तक, गरीब परवर हुआ उसे लोगों ने मलंग ही माना। जहाँगीर से जवाहरलाल तक वहाँ सैकड़ों मलंग पैदा हुए, आये और मरे जिनमें मुसलमान, सिख, हिन्दू सभी थे।

इधर बरसों से मलंगपुर वाले चाचाजी ही को मंलग मान लेने की सोच रहे थे और उस दिन तो उनके मलंग होने में किसी को भी शक न रहा जिस दिन अपनी बीबी और बंगला और

बैंक एकाउण्ट नौजवान नईम खाँ को मुस्कराते हुए सौंप दिया। पंजाब में, इन दिनों, यह मामूली काम न था। मलंगपुर लाख शान्त था पर कलकत्ता, नोआखली, बिहार रावलपिण्डी की घटनाओं से मन ही मन वहाँ वाले भी खौल रहे थे। ऐसे मौके पर जब हजारों के सामने चाचाजी ने अपना सब कुछ एक मुसलमान को सौंपा, तो बड़ा विरोध किया उनका हिन्दुओं ने आर्यसमाजियों ने। "हिन्दू की लड़की मुसलमान के घर इस तरह हर्गिज नहीं जायेगी।" एक ने तो ललकार कर सुनाया—चाचाजी आपका यह निश्चय ऐसा ही है जैसा राष्ट्रीय मतवाले कॉंग्रेस नेताओं का था उन्होंने आधा देश जैसे जिनको दे दिया वैसे ही इस आवारे नईम खाँ को आप अर्द्धांगिनी अपनी दिये दे रहे हैं। औरत भी इन्सान है चाचाजी, थानपर बंधने वाला पशु नहीं जिसे आज मौलवी और कल कसाई को आराम से सौंपा जा सके।"

"चुप रहो रामानन्द!" नाम से पुकार कर चाचाजी ने तीव्र स्वर से उसे चुप किया—"औरत अगर बाँधी नहीं जा सकती तो उसे मुक्त करना ही ठीक। इसमें मुसलमान हिन्दू का झगड़ा घुसेड़ना फिजूल। यह पंजाब है, यू० पी० नहीं, बिहार नहीं जहाँ हिन्दू लड़की का मुसलमान के घर या मुसलमान युवती का हिन्दू के घर आना भूकंपकारी हो। यहाँ तो द्वेष वश ही सही मगर सदियों से मुसलमान हिन्दुओं की और हिन्दू मुसलमानों की औरतें उड़ाते, बहकाते, शुद्ध करते घर में रखलेते हैं। मैं कहता हूं अब स्वराज्य हो गया, हमें फिरकेवाराना ढंग से सोचना बन्द करना चाहिये और सबको हिन्दुस्तानी मनाना चाहिये न कि हिन्दू, मुसलमान, सिख ईसाई या पारसी।

स्वराज्य की इस मंगल वेला में जाति पाँति को नष्ट करने वाली यह पहली घटना हो। जब तक दुनियाँ भर के इन्सान, अपने को एक ही परिवार का न समझेंगे तब तक विश्व कल्याण असम्भव है। अलग-अलग बड़ाई के फेर में हम एक दूसरे को किसी दिन नष्ट कर डालेंगे। दुनियाँ तो एटम बम से बचने की इसके सिवा आज कोई दूसरी तरकीब नहीं कि सभी अपने को एक ही परिवार का प्राणी प्राण पण से मानने लगें। पूर्वी और पछाँही, गोरे काले और पीले, पूंजीपति और कम्युनिस्ट भारत स्वतंत्र हुआ, विश्व के सोये हुए आध्यात्मिक प्राण चैतन्य हुए, प्रकाश फैल रहा है, अब कोई अन्धकार और नींद में क्यों रहे।'

उत्तेजित चाचाजी ने दूरपर खड़े छोकरोंको संबोधित कर कहा—"बोलो बेटो, स्वराज्य हो गया, जय हिन्द ! जय इन्सान !!"

इस तरह चाचाजी ने अपना सर्वस्व नईम खाँ को सौंप दिया सभी दंग रह गये। सभी हैरान। खासकर तब जब उसी दिन से चाचाजी ने बंगले में रहना छोड़ धर्मशाले में रहना शुरू किया पर लोगों ने बाहर-बाहर इतना ही देखा। अन्दर ही अन्दर चाचाजी पर उस घटना, उस सुन्दरी, उस सम्पत्ति त्याग के बाद क्या गुजरी यह परमात्मा ही-जानता होगा। उन्होंने सोचा कि त्याग-तो किया मगर-औरत से हारने पर। हार का त्याग भी कोई त्याग। वह मिलती तो जीवन कितना मादक होता। वह न मिल सकी तो अंगूर खट्टे हो गये। फिर भी उन्होंने सोचा, इस त्याग से इतना तो फायदा हुआ कि दुनिया दर्द-सर गया। अब प्रिय नहीं, परिवार नहीं, धन नहीं, बाजार नहीं—केवल मैं ही मैं हूं।

---

—मलंग

चाचाजी ने बंगला छोड़ते वक्त अपनी दवाएं तक छोड़ दीं पर एक डिब्बी वह टेंट में लेते गये। उसमें कोई सवा तोले अफीम थी। उन्होंने सोचा शायद किसी रोगी को आज ही जरूरत पड़े। पर स्वयं उनका विश्वास विष चिकित्सा पर था नहीं; भस्म भले कभी दे दी हो पर 'रस' तक वह रोगियों को नहीं देते थे। फिर यह अफीम किस रोगी के लिये उन्होंने ली।

धर्मशाले के फाटक पर सारी रात चाचाजी करवटें बदलते रहे। वह सर्वस्व त्याग की पहली रात थी। सब कुछ छोड़ देने पर भी उनके मन को विश्वास नहीं होता था कि उन्होंने जो कुछ किया वह हो गया। अभी देवीजी वहाँ थीं—मन के अन्तरतम में मोहक मुस्कराती हुई कहतीं "बदशक्ल ! संसार में सौंदर्य स्वरूप वालों ही के लिए है न कि तुझ अभागे के लिए ! सच-मुच अभागा उन्होंने अपने को माना, सोचा जिसका कोई नहीं, वह भी कोई आदमी ! घर गया, घरनी गयी, अब मैं ही क्यों रहूं शिथिल शरीर का भार ढोने के लिए। यह अफीम तो है न। दूसरे किसी के लिए नहीं, इसे मैं अपने ही इलाज के लिए लाया हूं। सबको कष्ट औषधियों से चंगा करने वाले की चिकित्सा विष ही है।

जोश की बेहोशी में चाचाजी सवा तोले अफीम चबा गये गुड़ की तरह और फिर नींद या मौत की इन्तज़ार में सोकर जागने लगे। पर न तो सारी रात उन्हें नींद आयी न मौत ही। बल्कि तेज़ नशे ने मोहमय स्वार्थ से कठोर हृदय को कोमल तर कर दिया। पूर्ण नशे में चाचाजी सोचने लगे कि मरने के प्रयत्न में विष खाकर उन्होंने कायरता की। जीवन का मैदान हारने पर भी शहीद बनने के लिए नहीं प्रेम के अलावा दूसरे किसी

भी बंधन से औरत को बाँधना इन्सानियत के खिलाफ है। सुख अगर दुनिया में हो तो पहले सबके लिए हो फिर अपने लिए. मैं देवीजी की नादानी या नईम खाँ की नौजवानी मे जलूँ क्यों जब कि सभी अपने कार्यों द्वारा एक सुनिश्चित दिशा की तरफ जा रहे हैं और वह दिशा मुक्ति ही है तब मैं किसी की प्रसन्नता का साधक न बन बाधक क्यों बनूं। पहले मैं सबको देकर भी देवीजी से कुछ चाहता था। आज मैं किसी से कुछ भी नहीं चाहता भिखारी आज शाह है जिसकी शान सर्वस्व दे देने पर भी कुछ भी न लेने ही में है।

यही सोचते-सोचते चाचाजी सो गये और दिन निकल आने तक खर्राटे भरते रहे। जागे तब जब शहर पुर के घुमक्कड़ लड़कों ने उन्हें अच्छी तरह से झकझोर कर शोर मचाया-"जय हिन्द चाचाजी ! स्वराज्य हो गया।" इस तरह वह कभी धर्मशाले, या मन्दिर के फाटक पर पड़ रहते, कभी किसी मसजिद की सीढ़ी पर। अब मलंगपुर वासियों के मन में चाचाजी के लिए अटूट श्रद्धा, उनकी साधुता के प्रति अडिग विश्वास हो गया। पहले दवा दारू वैरागी के नाम चाचाजी सिवा देने के किसी से कुछ भी न लेते थे, पर अब उन्होंने अपनी फीस बाँधली, यह कहकर कि-'इन्सान को हमेशा मिहनत से कमाकर खाना चाहिये और भीख न माँगना चाहिये। मगर फीस चाचाजी की क्या--एक पैसा—महज ! पर कमाल तो देखिये ! गृह हीन सर्वस्व त्यागी को भरसक मदद देने मलंगपुर का एक एक बच्चा दौड़ा। झूठे ही लोग चाचाजी को हाथ दिखाते और एक पैसा नजर करते। इस तरह शाम तक उनकी झोली में पचीसों-पचासों सैकड़ों रुपये के पैसे इकट्ठे हो जाते। ये पैसे वह बच्चों में बांट

देते। बच्चे प्रसन्नता से किलकते चिल्लाते-"जय हिन्द चाचाजी! स्वराज्य हो गया!" और चाचाजी को बड़ा आनन्द आता। वह मुस्कराते, पुलकते, छलछला उठते। जुटने वाले सारे पैसे चाचाजी बाँट ही नहीं देते कुछ की अफीम भी लेते। उस रात के बाद वह बराबर कसकर अफीम खाने लगे। पहले सवा तोला फिर डेढ़, फिर दो—लोगों को ताज्जुब होता कि वह इतनी अफीम कैसे हजम कर जाते। लोगों को मालूम न था कि दक्ष की बेटी के सती हो जाने के बाद ही महादेव ने हलाहल पान कर लिया था। पर महादेव मरे नहीं क्योंकि वह सबके शुभ करने वाले विश्वनाथ थे। शायद सबका भला चाहने वाले पर दुनिया का विष असर नहीं करता। सबको जीवन देने का आकांक्षी मर नहीं सकता।

—:※:—

चाचाजी के सर्वस्व त्याग और जीव मात्र की भलाई चाहने पर भी अगर मैं यह लिखूं कि पश्चिमी या पूर्वी पंजाब का कोई शहर पिछले दिनों खूँरेजी से खाली रहा तो गलत बयानी होगी चाचाजी के व्यक्तित्व का असर इतना ही बहुत रहा कि दो महीने तक मलंगपुर में चारों तरफ गड़बड़ी रहने पर भी ऊपरी शान्ति रही। पर अन्दर ही अन्दर पागल समाज अवाँ की तरह सुलग और तप रहा था।

और एक दिन पाकिस्तान से प्राण लेकर भागने वाले कोई पचास सिख मलंगपुर आये। उन्होंने पश्चिमी पंजाब में हिन्दू सिखों पर मुसलमानों द्वारा तोड़ गये सितमों की ऐसी भयानक और खून से लथपथ कहानियाँ सुनाईं कि सारे शहर के हिन्दू सिख खलबला उठे। तिसपर किसीने यह अफवाह फैला दी कि

---

जब सारा आलम सोता है।

मलंगपुर के मुसलमानों के पास लाहौर के पाकिस्तानियों ने वक्त पर काम आने के लिए लारी भर हथियार भेजे हैं।

"मैं कहता हूँ, धोके से मार खाने से खुलकर लड़लेना भला" एक सरदारजी ने राय जाहिर की।

"मगर चाचाजी जो हैं, इनके जीतेजी यहाँ मुसलमानों पर" कोई हाथ भी नहीं उठा सकता।"

"चाचाजी ज्यादा से ज्यादा साधु सन्त हैं" एक आर्यसमाजी ने साबेश कहा—"सियासत वह क्या जाने। राजनीति में उनकी राय क्यों मानी जाय? इस वक्त हिन्दू, मुसलमान एक दूसरे को खा जाने की कोशिश में हैं इनमें जो चूकेगा वही अन्त में बुरा पछतायगा।"

"यहाँ बात बढ़े तो" एक ने कहा—पहले चाचाजी के बंगले पर धावाकर उस नईम खाँ का सफाया करना होगा जो गुण्डई से हमारे सजातीय का सब कुछ लूटकर सीने पर मूँग दल रहा है। चाचाजी समझें या न समझें पर हिन्दू का माल हिन्दू खायगा—हम मुसीबतजदे खायेंगे न कि वह शैतान बेईमान।"

ऊपर की बातों के दूसरे ही दिन देखिये तो चाचाजी पाकिस्तान के सताये हिन्दुओं सिखों को सौ-सौ रुपये के नंबरी नोट देते—"लो! पचास हजार रुपये उन्हें दिये तो उतने ही अभी और हैं जो तुम्हारे लिए हैं। अब तो मुसलमान हिन्दू बराबर हुए? अब तो तुम लोग मारधाड़ न करोगे?"

इस तरह एक बार और चमत्कारपूर्ण त्याग से चाचाजी ने मलंगपुर को रक्तस्नान से बचाना चाहा और किसी हद तक बचाया भी। ऐसी रकम के इतने नोट इतनी आसानी से बाँटना जैसे हवा पतझड़ के पत्ते लुटावे—मामूली काम या बात नहीं।

---

—मलंग

फिलहाल आदमी सब कुछ त्याग सकता है पर रुपये नहीं। चाचाजी के कर्म से पुनः मलंगपुर में आध्यात्मिक, शाश्वत, हृदय को छूनेवाला वातावरण पैदा होगया पर क्षणिक, क्योंकि उनकी अनुपस्थितियों में वह शान्ति कायम न रह सकी। किसी लाचार रोगी की दवा के लिए तीन दिनों को चाचाजी के मलंग-पुर से बाहर निकलते ही शहर की हवा गर्म होने लगी यहां तक कि उनके लौटने के एक दिन पहले साम्प्रदायिकता की आग सारे शहर में लग चुकी थी। हिन्दू, मुसलमान, सिख सबने एक दूसरे के घर में आग लगा सचमुच घर फूंक तमाशा देख लिया था। गोकि उस वक्त तक हिन्दू सिख मजबूत थे, दूसरे पक्ष का नुकसान गहरा हुआ था। बहुत से तो मारे ही गये जो बचे वह तेजी से पाकिस्तान की तरफ भाग गये।

फिर भी मलंगपुर के सिख-हिन्दू भयभीत थे। इसीलिए कि सीमा के उसपार से आक्रमण होने का पूरा भय था। मलंगपुर के हिन्दुओं ने अमृतसर से सैनिक मदद माँगी तो है पर उसके आने के पहले ही अगर उसपार के मुसलमान टूट पड़े तो? इसी भय से अभिभूत हिन्दू और सिख तेजी से अपने बाल-बच्चे मलंगपुर से हटा रहे थे। तब तक लौटे चाचाजी। तीन ही दिनों में उन्होंने शहर को कितना बदला हुआ पाया। मुहल्ले के मुहल्ले जले खाक। शहर में एक भी मुसलमान नहीं; नईम खाँ को मार उत्तेजित जन समूह ने चाचाजी के बगले में भी आग लगा दिया था और देवीजी लापता थीं।

चाचाजी बड़े दुखी हुए। दुखी हुए इन्सानों के आपस में इस तरह हैवानों से भी बदतर लड़ने पर उन्होंने दोनों पक्षों को भला बुरा कहा, मगर ज्यादा सहानुभूति उनकी उसके प्रति हुई

---

जिसे कष्ट ज्यादा मिले जिसका नुकसान ज्यादा हुआ। सचमुच चाचाजी सारे शहर को एक बड़े परिवार सा मानते थे। फिरके वाराना ख्याल उनके मन में था ही नहीं। हिन्दुओं की गति-विधि पाते ही वह मुस्लिम मुहल्लों में अकेले जाकर चक्कर काटने लगे, पर सारे दिन घूमने पर भी एक भी आदमजात उन्हें दिखाई न दिया, सिवा मुर्दों के। हाँ, शाम के वक्त 'दरगाह बाबरशाह' से एक कराह उन्हें सुनायीं पड़ी। अन्दर जाकर देखा एक घायल, भूखा, प्यासा मुसलमान जिसके जख्मों से अभी तक खून टपकता। तुरन्त ही चाचजी सेवा में जुट गये। दरगाह की बावड़ी से पानी लाकर उसकी प्यास बुझायी, जख्म धोये, एक जड़ी रगड़ कर लेपा भी, पर खून का जाना बन्द न हुआ टिंचर आइडीन होता तो ठीक हो जाता लेकिन वह उनके पास नहीं। आस पास उजाड़। उन्होंने सोचा हिन्दुओं की बस्ती से जाकर लाने का। वह चले भी—पर इसी वक्त उधर से गोलियों की तड़तड़ाहट और गुलगपाड़ा सुनायी पड़ा-भयानक हाहाकार लड़ाई फिर छिड़ गयी। चाचाजी ने सोचा—ऐसी हालत में मरीज को छोड़ कर जाना ठीक नहीं। वह पुनः दरगाह बाबरशाह में लौट आये और तरह तरह की तरकीबों से जख्म से खून जाना बन्द करने लगे। उधर शोर होता रहा, इधर दवा होती रही। न तो शोर रुका, न जख्मों से लहू का जोर! शहर डटकर मरकर, उजड़कर श्मशानी सन्नाटे में आने लगा, मरीज की नब्ज डूबने सी लगी। इस वक्त तक चाचाजी अपना पूरा कुरता और तीन चौथाई धोती फाड़-फाड़ कर मरहम पट्टी, पानी मट्टी में खपा चुके थे, महज एक लंगोटी लगाये, मरीज की सुश्रुषा कर रहे थे। इस स्थिति में आते-आते उन्हें सब कुछ भूल गया था।

---

—मलंग

भूल गया था कि मलंगपुर में है, जहाँ दंगे हुए और इस वक्त भी हो रहे हैं। याद थी केवल एक बात-उस घायल प्राणी की जिन्दगी। भगवान ! यह मरे नहीं पर जिये तो कैसे जब रक्त का जाना रुकता ही नहीं और उचित दवा ही नहीं। अन्धकार चारों ओर प्रकाश कहीं नहीं।

इसी समय प्रचण्ड प्रकाश की दर्जनों किरणें चाचाजी और मरीज़ मुसलमान को घेर कर नाच उठीं। दरगाह के फाटक के पास से टार्च लाइटों से कुछ लोग अन्दर की जाँच कर रहे थे।

"कौन है ?"

"गोली मार दो !"

"बन्दूक हर्गिज़ न चले, यह बुजुर्ग की दरगाह—कौन जाने वे लोग मुसलमान ही हों।"

टार्च वाले नज़दीक आये तो चाचाजी ने पहचाना वे मुसलमान सिपाही थे। वह डरे नहीं, बल्कि बाग बाग हो उठे सिपाहियों को देखकर—"खूब आये-तुम्हारे पास तो टिंचर होगा, बिना टिंचर के यह बेचारा आदमी मरा जा रहा है।"

"तुम कौन ?"

"खुदा का नाचीज़ बन्दा।" चाचाजी ने जवाब दिया।

"शक्ल तो—मआज़ अल्ला--शैतानी है।" एक ने मज़ाक किया।

"शायद कोई फ़कीर हो, मज़ाक न करो।" दूसरे ने डाटा-यह बुजुर्गों की मज़ार है। सारे शहर में यहीं पर तो दो मुसलमान मिले। घायल को मरहद की तरफ़ 'जीप' में झपट कर ले जाओ, इस फ़क़ीर को लेकर हम लोग मार्च करते हुए उस मैदान की तरफ़ आते हैं, जहाँ लूटका माल और औरतें इकट्ठी

हैं। "बड़े मियां !" उसने चाचाजी से पूछा:—"तुम्हारे कपड़े क्या हुए ?

"कपड़े मरहम पट्टी के मसरफ़ में आ गये--दूसरा कोई चारा न था !"

"सुभान अल्ला !" उछल पड़ा वह तगड़ा मजबूत पंजाबी मुसलमान—"खुद नंगा हो आपने अपने कपड़े मरहमपट्टी में लगा दिये ! सुभान अल्लाह - हज़रत आप मलंग हैं मलंग।"

दल के साथ मैदान में आते-आते चाचाजी को मालूम पड़ा कि इस बार मुसलमानों ने भी कसकर बदला लिया। हजारों सिक्खों को भागने से पहले ही घेर कर मार डाला, सैकड़ों हिन्दुओं को भी। घर-घर से ढूँढ़कर औरतें निकाली गयीं। सबका सब कुछ लूट लिया गया। मगर लुटेरों के पास इतनी लारियाँ न थीं कि लूटका माल भी ले जाते और औरतें भी। दोनों में से माल को ले जाना पहला फ़र्ज माना गया। ट्रकें भरी जाने लगीं। लेकिन इतने ही में सिक्खों ने जवाबी हमला कर दिया। शायद अमृतसर से कुमक आ गयी; चारों ओर गोलियाँ-गोले ओलों की तरह बरसने लगे। मुसलमान दल के सामने प्रश्न यह उपस्थित हो गया कि क्या लेकर भागें- दुश्मनों की औरतें, या माल या अपनी जान। वे हिन्दुस्तानी की सीमा में थे अपने रंग में दुश्मन के घेरे में। उन्होंने पहले जान, फिर जहाँ तक मुमकिन हो नकदी माल लेकर भागने का तय किया।

"मगर भागने से पहले "पाकिस्तानी बलवाइयों के सरदार ने कहा-' मैं यह चाहता हूं कि इन औरतों में जो सबसे ज्यादा खूबसूरत हो उसकी निकाह करायी जाय हमारे दल के उस

सख्श से जो सबसे ज्यादा बदशक्ल हो।"

यह बात सबने पसन्द की और खूबसूरत औरत और बदसूरत मर्द की तलाश तावड़तोड़ शुरू हुई। कुछ ही देर बाद दो शख्श पेश किये गये एक औरत–निहायत हसीन और दूसरा मर्द—लंबी नाक, बड़ी खोपड़ी, चमगीदड़ी चीमड़काया, नाँद सा पेट, छोटी कौड़िया आँखें।

"क्यों सालार ने पूछा—"यह तो दरगाह वाला फ़क़ीर है, क्या अपने गिरोह में इससे ज्यादा बदशक्ल कोई नहीं?"

"गिरोह तो दूर, सारे पंजाब में इस मलंग से ज्यादा बदसूरत ढूँढने से भी न दिखाई पड़ेगा।"

उधर गोलियाँ चलती रहीं, इधर ऊधमी पाकिस्तानी चाचाजी को नौशा बनाते रहे। किसी ने पाजामा दिया, किसी ने अचकन, किसी ने पगड़ी, किसी ने जूते। मुल्ला आया–दुल्हन आयी। मगर इसी वक्त सिखों का दल भी मैदान में पिल पड़ा। पाकिस्तानी भाग खड़े हुए शादी की आखिरी रस्म पूरी किये बिना ही दूल्हा-दूल्हन को अपने भाग्य के भरोसे छोड़। चारों ओर मार-धाड़, भाग-दौड़, चिल्ल-पुकार। घबराकर दूल्हन ने दूल्हे की तरफ़ देखा और मानो देखे पर एतबार न कर आंखें मल कर पुनः पहचानने लगी। मगर बदशक्ल पति ने सौंदर्यमयी पत्नी को तुरन्त ही पहचान लिया। महान आश्चर्य से चमककर चाचाजी ने कहा—

"अरे-देवी जी-तुम!!"

—:o:—

जब सारा आलम सोता है—

# ७—राष्ट्रीय पोशाक

लखनऊ का काम्मोपालिटन क्लब सच पूछिये तो कुमारी मंजुला माथुर के कारण स्थापित हुआ और चलता भी है। वही क्लबकी सेक्रेटरी भी है, सभापति हैं कुमार देवपालसिंह। क्लब में ज्यादातर युनिवर्सिटी के ऊँचे क्लासों के तरुण हैं। बाहरी उद्देश्य है देश को सांस्कृतिक दृष्टि से चेतन्य करना पर अन्दर ही अन्दर हरेक मेम्बर कुमारी माथुर के रूप यौवन या चुलबुलेपन का आशिक। प्रत्येक की इच्छा एक यही कि किसी तरह मंजुला उसकी हो जाय। कुमार देवपाल तो विवाहित पर मिस माथुर के लिये वह पहली औरत भी छोड़ने को तैयार गद्दी पर बैठते ही मंजुला को रानी बनाने को राजी।

मगर मंजुला ऐसी उड़ती चिड़िया कि कुछ पूछिये मत। आँखें मिलाती सबसे रूख देती एक को भी नहीं। नतीजा यह कि कालेज के दर्जनों नौजवान बन्दर की तरह नाचते उसकी आँखों की डोरों में बंधे। तरुणों को बाँधकर नचाने में आनन्द आता मंजुला को। कालेज के दर्जनों नवयुवक और क्लब का हरेक सदस्य इसी भ्रम में मगन रहता कि मंजुलाजी सबसे ज्यादा प्रसन्न उसी पर हैं, पर मिस माथुर निर्मोहिनी, संगमर्मर की ठण्डी मूर्ति, हृदयहीन, हरारत-रहित। आपको नापसन्द आता केवल वह मद्रासी रिसर्चस्कालर रामन्नता, एम० ए० फाइनल वाला। क्योंकि रामन्ना बदशक्लों का नमूना, काला रंग, नाटा और गंठीला, घुटा सर, छोटी आँखें और जरा चिपट मुख। क्लब

कास्मोपालिटन सदस्य कोई भी बन सकता था, इसलिये रामन्ना का प्रकट विरोध मिस माथुर कर नहीं सकती थीं, पर उसके सभा में आते ही मंजुला के मुँह पर घृणा भाव आ जाते।

उस दिन रामन्ना नहीं था संयोग से, कास्मोपालिटन क्लब में चिड़ियाखाना चहक रहा था। परसों प्रान्त के शिक्षा मन्त्री क्लब में पधारने वाले थे। कैसे उनका स्वागत किया जाय—यही विषय सबके सामने उपस्थित था।

'इस मौके पर माननीय मन्त्री महोदय को' कुमार देवपाल ने कहा- 'पंचबाण-नृत्य दिखलाया जाय जिसमें केवल गर्ल्स काम करें।'

'एक कवि सम्मेलन किया जाय' दूसरे ने राय दी।

'उससे ज्यादा मजा मुशायरे में आवेगा।' तीसरे ने सलाह दी।

'मेरी रायमें' चौथे ने कहा-— ये सभी प्रस्ताव छिछले, शिक्षा मन्त्री के सामने कोई बौद्धिक-चर्चा होनी चाहिये। मेरा प्रस्ताव है कि हम लोग 'राष्ट्रीय पोशाक' विषय पर छोटे छोटे पेपर पढ़ें और इसी बहाने माननीय मन्त्री के सामने चन्द सुझाव रखें।'

इसी समय आता दिखायी पड़ा रामन्ना जो शायद दूर ही से चर्चा सुन रहा था और मण्डली में दाखिल होने के लिए मौके की तलाश में था—'राष्ट्रीय पोशाक की चर्चा ही शिक्षा मन्त्री के आगे ठीक होगी।' मंजुला के ठीक बगल में एक खाली कुर्सी ताड़ कर रामन्ना जा डटा। सूट-बूट-धारी काकुलबाज यारों को रामन्ना की हरकत बहुत बुरी लगी।

'ब्यूटी एण्ड बीस्ट—अंगूर का गुच्छा और कौआ।' एक ने स्वागत कहा।

---

जब सारा आलम सोता है।

प्रकट कहा दूसरे ने—'आप वहाँ क्यों बैठ गये ? यहाँ हमारी बगल में आइये। मिस माथुर को एक खास रंग से चिढ़ है—जानते नहीं।'

रामस्ना इस अपमान से तिलमिला उठा—'अगर किसी मिस को काला रंग ना पसन्द है तो वह अपनी जुल्फों, भवों आँख की बड़ी बड़ी पुतलियों पर चूना पोत लें। कास्मोपालिटन क्लब में सबरंगी लोग आते हैं यह जो न जानती हो वह मिस यहाँ आती ही क्यों है ? मैं कहता हूँ वह आदमी मूर्ख है, इडयट जो समझता है कि नारी केवल सुन्दर लोगों को पसन्द करती है। मनु ने लिखा है—

नैता रूप परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थिति:
सुरूपं वा विरूपंवा पुमानित्येव भुञ्जते।

नारी देखती है केवल पुरुष, रूप नहीं, कुरूप भी नहीं।'

'मनु जंगली युग के व्यवस्थादाता' बोली मिस माथुर मगर रामान्ना की ओर देखे बगैर—'आज की मजलिस में मनु का नाम लेना बिजली घर में चकमक की चिनगारी झाड़ना है। नारी शक्ति देखती है। आप लोगों में से कोई अगर पार्लमेंटरी सेक्रेटरी भी होता तो मेरे दिल में उसके लिए अधिक जगह होती।'

'अधिक जगह को डिफाइन कीजिये।' एक सुन्दर तरुण ने तीव्र आग्रह किया।

'आपसे बात करना भी मुझे नहीं। सुहाना यह है आपकी जगह, मेरी तंग दिली। पार्लमेंटरी सेक्रेटरी को मैं अपनी बगल में बैठाती—यह है उसकी जगह, मेरी प्रसन्नता।' मिस माथुर ने कहा।

— राष्ट्रीय पोशाक

'बस ?' कुमार देवपाल ने मार्मिक प्रश्न किया जिससे छनक कर मंजुला ने उत्तर दिया—

'बस नहीं पार्लमेंटरी सेक्रेटरी को मैं अपना हाथ भी आफर कर सकती हूँ—क्योंकि यह भविष्यवान हो सकता है, मन्त्री से प्रधान हो सकता है।'

'और अगर रामन्ना कल पार्लमेंटरी सेक्रेटरी बन जाय तो ?' एक ने पूछा।

'डोन्ट बी पर्सनल !' मंजुला बोली—'मैं जनरल बात कहती हूं, व्यक्ति विशेष की चर्चा फिजूल।'

'यही तो मनु ने भी कहा था' रामन्ना अपनी बात पर आया—'स्त्री रूप नहीं देखती, कुरूप भी नहीं, वह देखती है पुरुष—जिसे मिस माथुर पौरुष प्रभाव—पार्लमेंटरी पद पुकारती हैं। मनु और मंजुला दोनों की बातें जनरल और दोनों के ही जनरल गंज में रामन्ना भी है।'

इस वक्त शिक्षा मन्त्री का लाल वर्दी धारी अर्दली आया, क्लब के सभापति के नाम एक पत्र लेकर। पत्र में लिखा था—

'कल मैं आप लोगों में से एक पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी चुनूंगा इसलिए बेहतर हो अगर कल आप लोग किसी सार्वजनिक विषय पर छोटे छोटे निबन्ध मुझे सुनावें जिससे योग्य व्यक्ति को परखने में सुविधा हो।'

अर्दली पत्र देकर चला गया। क्लब में पुनः कोलाहल।

'राष्ट्रीय पोशाक वाला मल्जेकर काफी अच्छा है।'

'है तो अच्छा' हामी पारसी बोला—'और मैं जीत भी जाऊँगा, शिक्षा मन्त्री मुझे ही पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी चुनेंगे—पर

जब सारा आलम सोता है—

मिस माथुर के आफर का लाभ मैं न उठा सकूँगा-मेरी शादी हो चुकी है।'

'तू क्या जीतेगा' देवपालसिंह ने कहा 'जीतूगा मैं। तुम सबमें पर्सनलिटी है तो मेरी सेक्रेटरी बनने काबिल प्रतिभा भी पर क्या मिस माथुर पार्लमेंटरी सेक्रेटरी बननेवाले के साथ अपना वादा पूरा करेंगी ?'

'करूंगी पूरा वादा !' मंजुलाने आजादी से झूमकर जवाब दिया—'कल आप तो जीत नहीं सकते लेकिन जो भी विजय होगा उसे मैं अपना हाथ एक बार जरूर आफर करूंगी !

रामन्नाने चमक कर मंजुला की ओर अपना दाहिना हाथ बढ़ाया-'पक्का वादा ? हाथ मिलाइये !'

'वादा पक्का नाक सिकोड़ कर मंजुला ने जवाब दे दिया— 'पर तुमसे वास्ता नहीं, पार्लमेंटरी सेक्रेटरी से हाथ मिलाऊंगी।"

निश्चित दिन शिक्षा मन्त्री आये तो पर उतावली से भरे। बतलाया उन्होंने कि एक ही घण्टा बाद उन्हें कानपुर जाना है, फिर बनारस, सो, अधिक समय उनके पास नहीं। निबन्ध पढ़ने की जरूरत नहीं केवल मुझे दे दिये जायं। पढ़ कर मैं तुरन्त सर्वश्रेष्ठ लेखक को पार्लमेंटरी पद के लिए पसन्द कर लेता हूं।

फौरन ग्यारह लेख माननीय मन्त्री के सामने पेश किये गये जिन्हें उन्होंने तेजी से जांचना शुरू किया। इसमें उन्हें डेढ़ घण्टे लग गये। परिणाम जानने को उत्सुक—परीक्षार्थी डेढ़ घण्टे तक मन्त्री का मुंह ताकते रहे। अन्त में कुछ निश्चित कर वह उठे—

---

— राष्ट्रीय पोशाक

'मित्रो ! शिक्षा मंत्री ने शुरू किया –'आज की प्रतियोगिता बड़ी मनोरंजक रही। राष्ट्रीय भूषा क्या होगी इसपर आप ग्यारह मित्रोंने जो अमूल्य राय दी है उससे मेरा ज्ञानवर्धन हुआ। हरेक लेख को उचित ध्यान से मैंने पढ़ा। कुमार देवपाल सिंह की राइटिंग अच्छी, श्री शर्मा रुस्तम की भाषा बहुत अच्छी, विषय का प्रतिपादन गोविन्द शर्मा ने खूब किया है। पर आप लोगों में एक भाग्यवान हैं जिसकी रायटिंग—अच्छी भाषा और प्रतिपादन अच्छा, साथ ही बहुत अच्छे सुझाव हैं। नाम बतलाने के पहले मैं उनका लेख पढ़कर सुनाता हूं। फिर उस तरुण को मेरे निकट लाकर मिस मंजुला माथुर परिचय करायेंगी।

'राष्ट्रीय पोशाक का चुनाव' शिक्षा मन्त्री पढ़ चले—'बहुत जरूरी। मेरी राय में पं० नेहरू जो पोशाक पहनते हैं, किंचित परिवर्तन के बाद वही राष्ट्रीय ड्रेस होने काबिल है। चूड़ीदार पाजामा, कुरता, शेरवानी कोट, पर पाँव में अफगान सेन्डल की जगह नुकीले पजाबी जोड़े और सरपर गांधी टोपी की जगह नवाखाली हैट मुझे अधिक पसन्द। पश्चिम का हैट ही लेने काबिल है। मगर प्रधान मन्त्री के लिए यह पोशाक प्रापर नहीं मेरी रायमें सारे मन्त्रिमण्डल के लोग उसी वेशमें रहा करें जिसमें शंकराचार्य रहा करते हैं। बेशक प्रभाव देश और समाज पर काफी पड़ता है। मंत्रियों का सन्यासी वेश अनायास ही जनता के मन में श्रद्धा-विश्वास बढ़ायेगा। हरेक मन्त्री का वस्त्र काषाय रंग हो, पांव में खड़ाऊं हो, हाथ में पलाश दण्ड। कपड़ों में कौपीन, लुंगी और दुपट्टा हो, पर प्रधान मन्त्री और शिक्षा मंत्री केवल कौपीनधारी हों। यही लोग शंकराचार्य के शब्दों में

कौपीन वन्त: खलु भाग्यवन्त: माने जायं। कुछ लोग कहेंगे कि ऐसी पोशाक भद्दी या नकली मालूम पड़ेगी। मैं कहता हूं विलायती बातें नकली नहीं मालूम पड़तीं? यह हैट यह क्यूक यह कोट और बूट? देशी आर्य रंग ही भद्दी है? आर्य पोशाक को जो हीन माने मैं उसे नीच मनोवृत्तिका मानता हूं। सर्दी के दिनों में मन्त्री लोग गेरुया रंग के ऊनी चादर या अलफी पहनें जहाँ पैदल चलने से काम चले, बैलगाड़ी से परहेज करें, जहाँ बैलगाड़ी से काम हो वहाँ घोड़ागाड़ी पर न चढ़ें—सिवा लंबे दौरों के मोटरपर घूमना पाप मानें। मन्त्री बनने वाला व्यक्तिगत सम्पत्ति कुल या देश को दान देकर पदासीन हो और फिर आजन्म राष्ट्रकोश से उसका प्रबन्ध किया जाय। विदेशों में जो राजदूत रहें वह वही पोशाक पहनें जो उस देश के लोग पहनते हों। तुर्की में तुर्की, रूस में रूसी, चीन में चीनी और अमेरिका में अमरीकी लिबास। खास अवसरों पर विदेशी मंत्री भी शंकराचार्य के ही वेश में सजें। गवर्नर साधारण भूषा याने पंजाबी जूते, चूड़ीदार, पाजामा कुरता, शेरवानी और नवाखाली हैट पहनें, हाँ स्त्री मन्त्रिणियाँ जैसे चाहें वैसे वस्त्र धारण कर सकती हैं,--पर स्वदेशी।"

'ये सुझाव सम्पूर्ण नहीं' लेखको मेजपर रखते हुए शिक्षा मंत्री ने कहा—'पर सर्वोत्तम हैं। इनके लेखक श्री रामस्वा को मैं बधाई देता हूं और मनोनीत करता हूँ अपना पार्लमेंटरी सेक्रेटरी। प्रार्थना करता हूँ कि मिस माथुर रामस्वाजी का कुछ परिचय मुझे दें।'

मिस माथुर पर जैसे पहाड़ गिर पड़ा। हो वह काला मद्रासी जीतेगा, उन्हें सपने में भी आशा न थी। वही जीता ही नहीं

पार्लमेंटरी सेक्रेटरी भी मनोनीत कर लिया गया ! चकरा कर मंजुला कुरसी पर गिर-सी पड़ी। तबतक लपक कर रामन्ना स्वय मन्त्री के निकट आ रहा - त्रिपटी मुंह काला भुजंग, नाटा गुट्ठल, घुटा सर—

'मेरा ही नाम रामन्ना है। पार्लमेंटरी सेक्रेटरी की हैसियत से प्रांत की सेवा करने का अवसर लाभ होने की मुझे खुशी है पर ज्यादा खुशी है इस बात की कि मिस माथुर मुझे अपना हाथ आफर करेंगी।

रामन्ना ने मंजुला की तरफ दाहिना हाथ बढ़ा दिया और अचरज ! मिस माथुर ने भी अपना हाथ बढ़ाया यह कहकर कि

"पार्लमेंटरी सेक्रेटरी मिस्टर रामन्ना कांग्रेचुलेशन्स !"

———

# चित्र विचित्र

यह कहानी एक नेता की है, पर कोई दोस्त नेता बुरा मानकर अपने चित चोर की दाढ़ी में तिनका न ढूढ़े। सभी नेता बुरे नहीं लेकिन यह कहानी वैसे बुरे जननायकों में से एक की है जिनकी चर्चा दिवंगत महात्मा गांधी को एक तीव्र पत्र लिखकर दक्षिण भारत के विख्यात देश भक्त श्री कोण्डावेंट पैया गारूने की थी।

यह कहानी चन्द देशद्रोही चपट व्यापारियों की है जिनमें कपड़े का व्यापारी गल्ले का रोजगार, भवन निर्माण का ठेकेदार और अखबार का प्रकाशक—स्वामी शामिल हैं। पर उक्त धन्धे के हरेक पेशेवर को कमीना कहना उद्देश्य नहीं, मकसद है उन दुष्टों का नग्न रूप अवाम को दिखा देना जिन्हें एक दिन जवाहरलाल नेहरू ने चौमुहानीभर फांसी दे देने की सलाह दी थी लेकिन—अरसा, बरसों गुजरने और गुनाहों के बराबर बढ़ने पर भी—लटकाया एक भी न गया।

यह कहानी महात्मा गांधी के उन छिपे हत्यारों की है जिनका अपराध चाण्डाल नाथूराम विनायक गोड्से से बाल बराबर भी कम नहीं, पर जिनके हाथों में न तो धड़धड़ाती पिस्तौल है और न आस्तीनोंपर चिल्लाता-पुकारता लहू।

यह कहानी सारा भारत जानता है कानों कान फुसफुसाता छिपाता हुआ, पर चौड़े में छपाता हूं एक मैं—बहूजन हिताय; बहुजन सुखाय।

यह कहानी यों है:—( मैं जल्दी करता हूँ यों कि हैरत से रुका किसी पाठक का दम कहीं घुट न जाय! )

नाकपुर—आप जानते हैं? कानपुर नहीं, नागपुर भी नहीं, नाक-नागपुर। वह कानपुर के सौ मील उत्तर और नागपुर के पचास मील दक्षिण में फैला हुआ है। वहीं के नामी नेता श्रीकंचनराम के यहां उस दिन खासा महाभोज था पर नाम था चायपार्टी उसका। शहर के एक हजार छोटे मझोले बड़े आदमी कंचनराम के दरवाजे के सामने वाले विस्तृत बाग में जुटे हुए थे।

'ऐसी दावत अंग्रेजी राज में राजा-रईस ही दे सकते थे।' एक ओर दो-तीन आदमी ताज्जुब में बात कर रहे थे।

'आज कांग्रेसी राज होने से राजा वही जो मन्त्री हो, रईस वही जो हो एम० एल० ए०।'

'चर्व-चोष्य-लेह्य पेय सबका इन्तजाम कञ्चनरामजी ने किया है। दुनियाँ कन्ट्रोलों से जकड़ी हो, पर मोटे नेताओंपर कोई कन्ट्रोल नहीं।'

'अगले जमाने में विधान गढ़ने वाला राजा होता था। कानूनों के ऊपर, जो गलती कर ही नहीं सकता था। अब कांग्रेसी राज में वही महान पद बड़े और पुराने नेताओं का है। देखो न कञ्चनराम को शहर के चार के चारों मोटे असामियों ने घेर रखा है।'

'अजी पांचो घी में है -पांचो! चारों को तो ठेके, परमिट पेपर दिला-दिलाकर एम० एल० ए० जी ने मदमस्त हाथी बना दिया और देशभक्त जी को रुपये की झड़ी लगा बरसाती गोबर बना दिया चारों ने!'

'क्या कहने! परस्पर सहयोगवाली कम्यूनिस्ट कलाका भारतीय-सस्ता-संस्करण।'

'आखिर इस दावत का मकसद-उद्देश्य क्या है।'

ऊपरी उद्देश्य तो शहर में दंगा शान्त होने, अमनोअमान कायम हो जाने की खुशी में प्रीति-सम्मेलन है, अन्दरी बातें क्या हैं-अन्तर्यामी ही जानते होंगे।

उक्त बातें करने वालों से काफी दूर पर नेता कञ्जनरामजी अपने चतुरंगी-संगियों में चहक रहे थे--

कञ्जनराम – कितना भयानक था इस बारका दंगा जिसे भगवान के बाद एक मैं ही शांत करने मे समर्थ हुआ।

कपड़ा गल्ला सौदागरने खुशामद के स्वर में दांत निकालते हुए कहा—'भगवान के बाद नहीं पहले श्रीमान का नम्बर है। भगवानने प्रकट फल किसे दिया-? किसी भक्तने देखा? और आपके फल चखने वालों की चतुरंगी सेना है। मैं तो सच कहता हूं -आपके दर्शनों के बाद मेरी निगाहों के नीचे कोई दूसरा भगवान नहीं आता।

'चापलूसी बहुत न कर।' मकानों का कान्ट्रेक्टर कड़कड़ाया बनिये की तरफ--दंगा शुरू किया मैंने, रोका भी बन्देने ही -- और फायदा उठाया चौचक एम० एल० बी० जी ने राह का काँटा सीने का शूल समूल समाप्त हो गया बलवे में, लौडरी के आसमानी चँदोवे में चारचांद लगे--मुनाफे मे!'

'अरे धीरे! बोल यार!' कञ्जनराम ने मकान कान्ट्रेक्टर दोस्त को होशियार किया।। शुक्रगुजार हूं। तेरा भाई एहसानमन्द हूं।'

'एहसानमन्द नहीं' कन्ट्रेक्टर बोला— 'मेरा कलेजा कभी नुकीली आरियो से छिदता है--कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह सत्य नहीं, असत्य है, प्रकाश नहीं मोहान्धकार है। हम किसी को धोका दे रहे हैं, हम अपने को धोका दे रहे हैं, हम सभी को

धोखा दे रहे हैं। हम किसी धोखे में हैं! जब वह बुड्ढा महात्मा दिल्ली की प्रार्थनाओं में ईश्वर-स्वरूप जनता जनार्दन के सामने जन और नायकों की कमजोरियों पर रोता है, मुझ दुर्जन-खल नायकका कलेजा कटने लगता है। रामभक्त साधु को कुन्द छुरी से हलाल करने का सा पाप मैंने किया, कि आप जैसों की मदद से पिछले आठ महीनों में आठ लाख रुपये बनाये। आपको नजराना क्या देना पड़ा दिलही जानता है मेरा या आपके पुण्यपाप का बैंक—एकाउन्ट रखनेवाला अन्तर्यामी। लेकिन मेरे आठ लाख बड़े महंगे पड़े। हैजा में बेटे मरे तीन, लाहौर में दूकानें जलाई गयीं तेरह—मेरे आठ लाख भारी महंगे! बहू छत से गिर कर मर गयी। दो बेटियाँ लाहौरी लुटेरों ने लूट लीं। और मेरे दिलपर सुनो तो हन्टरों की सनकार!'

पंजाबी को सनकते देख राजनीतिक चाकबाज नेता का माथा ठनका। वह चमककर उनके पास आ गया—मुस्कमुस्क राता। आवेशित-अन्तरंगीका हाथ मजबूती से पकड़कर बगीचे से सटे बंगले के ड्राइंग रूम की तरफ खींच ले चला कञ्चनराम। बन्दर के पीछे दुमकी तरह नेता के दूसरे चुने मित्र भी पछियाते गये।

ड्राइंगरूम ही शब्द 'फिट' हो सकता है नाकपुर के नेताराज कञ्चनराम के उस पचीस फुट चौड़े, पैंसठ फुट लंबे पचहत्तर फुट ऊँचे महाप्रकोष्ठ के लिए। और कैसा 'डेकोरेशन' बिलकुल ब्यूटीफुल वबैया वैभव विस्तार! नये ढंग के फर्निचर जिन्हें दूर से देखिये तो तराजू और नजदीक से आजमाइये तो टेबुल, कुर्सियाँ और क्या गिनाऊँ मैं—('माडर्न' नजर से कम कल्चर्ड मैन)।

---

जब सारा आलम सोता है—

कमरे में आते ही ज़रा बरमते से कञ्चनराम पंजाबी दोस्त पर उखड़े--

'निहायत अजीब आदमी ! सरदारजी आपको आज हो क्या गया है !'

'मैंने एक बोतल बराण्डी चढ़ाली है। तेरे आगे बिना पीये मुँह खोलना मेरे कमान के बाहर की बात। पर कई दिनों से मैं बड़ा बेज़ार हो रहा हूं ज़िन्दगी से। ख़ासकर जबसे लड़कियाँ मेरी लूट ली गयीं-आह !"

'तो अब आपका मकसद क्या है ? इस शोरशराबासे फायदा ?'

'फायदा यही कि हमें पश्चाताप करना चाहिये, तौबा करना चाहिये, फ्यूचर में पाप नहीं इसके लिए प्रार्थना-प्रयत्न करना चाहये। आज सबेरे मेरे मन में एक बात आयी।'

'कौन सी बात !' सभी दोस्तों ने सुनने की उत्सुकता दिखायी।

' बात यह कि आज श्रीकञ्चनरामजी उस चित्र के ऊपर से परदा हटाकर देखें जिसके कमाल कलाकार पर इनका विश्वास नहीं। मैं कहता हूँ जो बात चित्र में कञ्चनरामजी बरसों से ढूँढ़ रहे थे वह आज नुमाया हो गयी हो तो ताज्जुब नहीं।'

'क्या बात ? कैसी तस्वीर ?? अजी वाह ! कंचनरामजी हमें नहीं बतलाया यह भेद--यह भी कोई दोस्ती रही। हमसे ज्यादा यह जट्ट जाने ! अभी दिखलाइये वह तस्वीर, फौरन सुनाइये उसकी हिस्ट्री-मिस्ट्री।'

सारे के सारे दोस्तों ने एक स्वर से आग्रह किया।

'इसकी कहानी मैं सुनाऊ ?' पंजाबी ने कंचनराम की आज्ञा

चाही। कुछ गुबार निकल जाने से अब उसका आवेश हलका हो गया था। वह अब कटु नहीं, 'फ्रेन्डली मूड' में था।

नेता ने अनिच्छा से स्वीकृति दी—'सुना—भाई सुना दे। तब तक मैं जा बाहर का प्रबन्ध देखता आऊं। पाँच मिनट का वक्त देता हूं। इसी में सारा किस्सा मुख्तसिर कर डालिये। इन मित्रों से क्या छिपा, क्या छिपाना! पर विस्तार करियेगा तो कान पकड़कर 'गो आन' सुनाया जायगा।'

कंचनराम एक अनोखी अदा से अँकड़ता बाहर चला गया।

'कंचनराम के बाप नाकपुर के नामी जौहरियों में।' सरदार कान्ट्रेक्टर ने शुरू किया-"हिन्दुस्तान की सारी छोटी रियासतों से उनका सम्बन्ध। रोजगार उनका रजाओं को जवाहरात, गहने, इत्र--एक की जगह दस दामोंपर--उधार देना और फिर सारे साल रुपयों की तहसील में चक्कर काटना। कभी पूरबी रजवाड़ों में, कभी पश्चिमी। नाकपुर की कोठी में याने इसी बंगले में, उन्होंने सोना-चाँदी की झड़ी लगा दी। रतनों की फुलझड़ी। कंचनराम के पिता लक्ष्मी के बरद पुत्रों में थे। उनमें बुद्धि की, सुकुमारता नहीं थी। कमाते थे समुद्र की तरह प्रदेश प्रदेश की मीठी मुनाफेदार नदियों के घाटों का पानी पचाने में समर्थ। पर, प्यासे की पुकार से उदार वह कभी न बन सके। खारे स्वार्थी, ठण्डे जौहरी, ज्योतिर्मय सूर, वज्र-कठोर!

'कंचनराम के बाप पिघले कभी तो केवल एक आदमी से, उनका पवित्र नाम हम अच्छी तरह जानते हैं—महात्मा गाँधी। महात्मा जी को एक बार अपनी कोठी पर बुलाकर कंचनराम के पिता ने सवा लाख रुपया दिया था। वह बहुत बीमार थे।

---

महात्माजी नाकपुर पधारे थे। कंचन के पिता के मन में आया कि अगर किसी कदर महात्मा के चरण उनके बंगले तक आ जायँ तो वह बच जायेंगे। महात्माजी ने भी आना मंजूर कर लिया, रुपयों के लिहाज से कम, बीमार को ढाढस बँधाने के उदार विचार से ज्यादा। महात्मा की स्वीकृति सूचना पाते ही मेरी आँखों देखी बात है कचनराम के पिता आधे चंगे हो गये। स्वयं बिस्तर से उठकर खद्दर से सारा घर सजाने लगे। फौरन से पेश्तर अपने खास आर्टिस्ट या चित्रकार खुर्शेद ईरानी को बुलाया। बोले दो चित्र बनाने हैं। एक महात्मा गांधी का और दूसरा एकलौते पुत्र कंचन का। ईरानी ने दिक्कत सुनायी' उसके पास कागज, कैनवास, कूंच, रंग कुछ भी नहीं, क्योंकि उसकी माडर्न छोकरी शमा ने पिछली रात चित्रकारी का सारा सामान इस शान से जला दिया कि—शैतान की मार! दिन रात की तस्वीर पिताजी तुमको बेदीद कर देती ?' इस पर बूढ़े जौहरी ने कनवास और कलर के लिए सारा शहर छनवा डाला पर ईरानी कलाकार के काम काबिल चीजें न मिल सकीं। मिला भी तो इतना थोड़ा सामान जिससे चित्रकार के कथनानुसार एक ही चित्र तैयार करना मुमकिन था। कंचनराम के पिता ने आज्ञा दी कि—महात्मा का ही कोई अद्भुत पोज तैयार किया जाय। दस मिनट ही वह ठहरेंगे। इतने में ही स्केच तैयार हो मगर हमारे नेता साहब बचपन से हठीले। अड़ गये बाप से कि-महात्मा की नहीं मेरी तस्वीर तैयार की जाय। जनाब सर पटकने लगे, जान देने लेने पर उतर आये। लाचार कलाकार ने कनवास के दोनों ओर चित्र उरेहने का निश्चय सुनाया। एक तरफ हठीले कंचनराम का, दूसरी तरफ हठव्रत महात्माजी का। कंचनराम

नौशे की तरह बन ठन कर आये, आँखों में सुरमा जुल्फों में भंवरें, सर पर रतन बहार ताज-कश्तीनुमा, कमर में कटार धारदार। कमसिन कंचनराम आते ही कलाकार से मचल पड़े-पहले मेरी तस्वीर बना लो, फिर किसी और की। नहीं तो-नंगी कटार दाहने हाथ में शोखी से सुधार कर, कंचनराम ने कलाकार का खून करने का भाव दर्साया और बूढ़े ईरानी खुर्शेद की आँखों में बेवकूफ की माशूकाना अदा खिंच गयी। कनवास पर कोयले की करामात आंखें खोलकर कुछ बोलने का रंग बाँधने लगी। इसी वक्त बगीचे से ठण्डी हवा की तरह सनसनाती हुई खबर आयी-'महात्माजी आ गये।

पर खुर्शेद कंचनराम की बाँकी अदा के चित्रण में ऐसा व्यस्त था कि जिस 'गालिब' के लफजों में 'खींचता था जिस कदर उतना ही खिंचता जाय था।' और कंचनराम के कानों में भी युगावतार के आगमन की भनक न पड़ी। चित्रकार खींचने में मस्त, कंचन खिंचवाने में 'माशूक शोख आशिक दीवाना' वाला मामला निश्चिन्त भाव से सामने था। महात्माजी की नजर भी आते कञ्चनराम पर पड़ी, पर खुर्शेद और गांधी के नुक्ते नजर में दुनियावी गुबार और जन्नती हवा का अन्तर कलाकार मस्त हुआ था कञ्चनराम कमसिन की बांकी अदा पर महात्मा खिंचे कटार की धार से; शायद दोनों की हठयोग भरी मुद्रा भी कर्मयोगी को कौतूहलकारी मालूम पड़ी। वह कलाकार के पहले निकट आये, कञ्चनराम के-जिसके हाथ में घातक शस्त्र था।

यह क्या! प्रश्न करते करते महात्माजी समझ से संभले-अपना चित्र सजवाने में तुम इतने मशगूल हो कि आवागमन

---

का ज्ञान नहीं। अज्ञान तो बहुत देखे पर ध्यानावस्थित होने की ताकत काफी है तुम में। दरिद्र नारायण पर ध्यान दो। देश का ख्याल सोचो। खुदसाजी और खुद बीनी में कोई मत नहीं, कल्याण नहीं, जस नहीं। यह कटार किसी गरीब घसियारे को दे दो। वह इससे गला काटने की जगह पेट भरने का काम लेगा। पहनो सादे कपड़े, नौरतन टोपी हमारे चतुर्दिग की गरीबी में गुलामी की वर्दी है। उतारो इसे, उतारो उसे, खद्दर का नयाचोला चैतन्य चढ़ाओ! और आप न माने पर मैंने जो बात आँखों देखी कैसे एतबार करूँ। खुर्शेद अभी तक कनवास और कायले के चक्कर में था। उसका ध्यान गाँधीजी की तरफ तक गया जब माडल देखने के विचार से कनवास से कंचनराम की तरफ गरदन उसने मोड़ी। यह क्या। पहली सूरत ही गायब। यह नकशा ही न रहा। उस वक्त गाँधी जी से प्रभावित हो कंचनराम अपने तनके रेशमी कपड़े उतार रहे थे। किमखाब की अचकन, रेशमी क प की कमीज। कटार और कलँगीदार कश्तीनुमा टोपी पहले से ही जमीन सूँघ रही थी। अब उसकी नजर महात्माजी पर पड़ी और उनके विचित्र-दर्शन चेहरे पर गड़ी की गड़ी रह गयी। उसे वह चेहरा शाही मालूम पड़ा, बादशाही नहीं। खूब-सूरत न होते हुए भी गाँधीजी का नकश कलाकार खुर्शेद के एक ही लफ्ज में 'दिल-फरेब' था। कंचनराम की शक्ल जितनी ही कारीगरी से बनायी हुई थी, महात्माजी की उतनी ही लापरवाही से, पर उस लापरवाही में क्या कारीगरी खुर्शेद ने देखी-कैसा कमाल पाया! लेकिन गाँधीजी टाइम के पाबन्द। दस मिनट पूरे हो गये। वह चल दिये, माशूक का पोज और आशिक का कम्पोज···· चुपचाप बिगाड़कर। बिना कुछ कहे मौलिक भावुक

---

कला के प्रति अपनी राय कह दी मानो महात्मा ने। खुर्शेद खम खाकर रह गया-गम खाकर इतने बड़े करेक्टर आर्टिस्ट ने खुर्शेद के चारकोल स्केच की तरफ उपेक्षा से भी नहीं देखा। उसने कंचनराम का चित्र जिसकी अभी सुकुमार रेखाएँ मात्र उभरी थीं, ऐसा तैयार किया था जिसके आगे विलायती 'डबू बाँय' का आर्टिस्ट भी फीका दिखे-सोचा उसने-बाजार में आने तो दो कभी। जरा तस्वीर में रंग भरने तो दो-जान जागने तो दो।

'यह सब खुर्शेद ने दूसरे दिन मुझे बतलाया वह मेरा दोस्त है, अक्सर मैं अपने नक्शे सुधरवाता हूँ। खुर्शेदका दिल जैसे दरपन। पर दरपन तो अपारदर्शी, कलाकारका दिल पारदर्शी। दूसरे दिन उसने बतलाया कि गाँधी के अन्दाज खासमे चले जानेके बाद पहले तो उसकी आँखों के आगे विचित्र बिजली चमक गयी। फिर वह सोचने लगा- महात्मा की अदाएं भी माशुकाना। तपके कैसे तेवर-कमनीय 'रूप'। असेलो शाहके कैसे जल्वे। बाहरी रूपपर आन्तरिक अनुराग कैसे खुशरंग। महात्मा बदशक्ल नहीं, खूबसूरत शेत नहीं, प्रेमी, मामूली आदमी नहीं फरिश्ता—आह! चटकना लगा खुर्शेदके गाल पर—फरिश्ता खसलत उसके सामने आकर चला गया और उसने पहचानने में देर लगायी। न खिंच सका, न खींच ही। अपनी बेवकूफी पर पानी-पानी हो रहा-सजल। उसी अवस्था में तुलसीदासने गाया था 'सजल नैन गद्गद गिरा, गहबर मन पुलक शरीर।' और कलाकार ने कनराम का दूसरा रुख पलटा। कलाकी स्वच्छ भूमिका उसकी आँखोंके आगे खिल गयी, हृदय उमड़ा, समुद्र लहराया, अंगुलियां हिलीं, चारकोल बह चला, लकीरें तरंगोंमें तैरने लगीं। खुर्शेद तन्मय होकर कला कसरत हुआ तो रग

---

जब सारा आलम सोता है—

आ गया बतलाया उसने – छत्तीस घण्टे वहां से उठा नहीं, कोई हाजत ही दरपेश न आयी। कंचनरामके बापने कहा-मरेगा बुड्ढा क्या। पर बुढ्ढा खुर्शेद उठा तो अमर होकर उठा। क्या तस्वीर बनायी जानदार मुसव्विर ने कि जिसने देखा वही दंग-रंग रंग रह गया। वह तस्वीर उस कमरे में है-कंचनरामजी भी आ रहे हैं। चलकर वह तस्वीर आप अपनी आँखों देखें तो। आँखें खुल जायगी।

नेताजी के आते ही पहला आग्रह मित्रों ने यह किया कि खुर्शेद की वह तारीफी तस्वीर उन्हें दिखायी जाय। पंजाबी इंजीनियर कान्ट्रैक्टर के बतलाये कमरे में मित्र-मण्डली कंचनराम की इच्छा को ठेंगे पर मार उस तरह पिल पड़ी जैसे काश्मीर की सीमा में लुटेरे।

पहले तसवीरका जो रुख मित्रों के सामने आया उसमें कंचन राम की कमसिनी कमनीय थी कुछ ऐसी कि नेताराज स्वयं कह उठे—'पहले मैं कैसा था।' इसपर पंजाबी पट्ठे ने ताना दिया 'पर आज जरा दरपन में मुखड़ा देख, हंस और चंडूल चेहरा, गुलाब और भटकटैयाका फर्क। पर जरा इसके पीछे वाली तस्वीर तो देखिये-कमाल उसीमें है, उसी के बारे में खुर्शेदने पेशेनगोई की थी।' इसपर नेताने दूसी जबान में कहा कि 'कलाकारी की भविष्यवाणी और कलवरिया के कोलाहल में कोई सार मुझे तो आज तक दिखाई नहीं पड़ा। उसने कहा तस्वीर बदलेगी। तीस बरस गुजर गये न बदली – न बरसात। तस्वीर भी बदलती है! नौ हाथ की हर्रे, चार अंगुल की जुबान। उसने कहा था कि जिस दिन मैं सत्यसे, त्यागसे, एकरंगी प्रेम से गिरूँगा। उसी दिन चित्र में मेरे बाये हाथ में जो प्रस्फुटित कमल है, संकुचित

होकर झुक जायगा, दाहने हाथ की कटार सामने खड़े महात्मा गान्धी के सीने की तरफ मथ जायगी और मेरा खूबसूरत मुखड़ा स्याह पड़ जायगा। पर आजतक हुआ कुछ नहीं, किया सब कुछ—तुम से क्या छिपा है।' लेकिन-तसवीरका दूसरा रुख देखते ही पंजाबी उछलकर चिल्ला पड़ा-'लो, कंचनरामजी देख लो। तुम्हारे हाथ का कमल मुरझा गया, कटार महात्माजी की तरफ मुड़ गयी। ओह—हिप-हिप हुर्रे। कलाकार भविष्यद्वक्ता-खुर्शेद! खुदा तुझे सलामत रखे!' बेशक तस्वीर बदली हुई। वही हाथ, वही मुंह वही मूरत—पर 'पोज' बदला—हैरत!' कंचनराम का चेहरा देखा तो पिटा हुआ तथा—'यह बदल कैसे गयी—खुर्शेद! खुर्शेद!!' नेताराज के मुंह से निकला। खुदा सब कुछ देखता है, पंजाबी ने मंजूर किया ताने से-'उसकी अपनी आंख नहीं। सर्वदर्शी विश्व विलोचन वह अकसर बन्दों की आखों की दूरबीन बनाकर दूसर दूर भविष्य का विस्तार-एतला-जित मार्जित रूप देख लेता है। जिसको बीनाई बख्शेपरवर दिगार। तेरे अन्तरका द्रष्ठा तो आज चित्र-स्रष्ठा यह खुर्शेद ही है। पर अफसोस, आज तू कैसा जानी दुश्मन है खुर्शेद का कि उसे एक बार न मारकर बोटी-बोटी कर रहा है। उसके माडल गर्लपर तेरी बद नजर। तेरे डरसे रुस्तम से शमा की शादी खुर्शेद ने बरसों जल्द कर दी और चार दिन पहले तूने दंगे के बहाने खुर्शेद के घर आये दामाद को मरवा डाला! अब शमा तेरी, रोशनी तेरी, महफिल तेरी! क्या खूब तसवीर बदली है। कलका परम वैराग, आज का पतित अनुरागी। कलका जनसेवक आज का तन-सेवक। सत की दोहाई देनेवाले के चित का यह चिन्तनीय चित्र-विचित्र!' नेता अभागा पहले

---

जब सारा आलम सोता है।